दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2498 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 9

अध्यात्म-पद

चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै ।टेक ॥

आप अभंग तथापि अंग के, संग महा दुःख (पुँज) बहै ।

लोहपिंड संगति पावक ज्यों, दुर्धर घन की चोट सहै ।चेतन ॥1 ॥

नामकर्म के उदय प्राप्त नर-नरकादिक परजाय धरै ।

तामें मान अपनपौ विरथा, जन्म जरा मृतु पाप डरै ।चेतन ॥2 ॥

कर्ता होय रागरुष ठानै, पर को साक्षी रहत न यहै ।

व्याप्य सुव्यापक भाव बिना किमि, परको करता होत न यहै ।चेतन ॥3 ॥

जब भ्रम नींद त्याग निज में निज, हित हेत सम्हारत है ।

वीतराग सर्वज्ञ होत तब, 'भागचंद' हित सीख कहै ।चेतन ॥4 ॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जनवरी : 1972] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (321) एक अंक 25 पैसा [पौष : 2498

अंतरतत्त्व का अनुभव

* वन में विचरते हुए वीतरागी संत प्रतिक्षण और प्रतिपल अपने अंतरतत्त्व का निर्विकल्प होकर अनुभव करते हैं। अहा, धन्य हैं वे अनुभव के क्षण। धर्मी-गृहस्थ भी घर में रहकर कभी-कभी ऐसा निर्विकल्प अनुभव करता है।

* अहा, ऐसे अपने अंतरतत्त्व का निर्णय करे तो अंतर में अनुभव करने का अवसर आये। स्वद्रव्य कैसा है, उसे पहिचानकर वह उपादेय करने जैसा है। उपादेय किसप्रकार करना ?—उसके सन्मुख होकर अनुभव किया, इसलिये वह उपादेय हुआ और उससे विरुद्ध समस्त विभाव हेय हो गये, उनका लक्ष छूट गया।

* जो एक सहज ज्ञायकभाव है, वह परमतत्त्व है, और दूसरे सब भेद-भंगरूप व्यवहारभाव तो अपरमभाव है। परमभावरूप जो शुद्धतत्त्व, उसके अनुभव से प्रचुर आनंदसहित आत्मा का वैभव प्रगट होता है, वह मोक्षमार्ग है। अतः परमभाव ही अनुभव करनेयोग्य है।

* मोक्षमार्ग के शुद्धभाव में व्यवहार के किसी भेद-भंग का अवलंबन नहीं है। एक सहज परम तत्त्व का ही आलंबन है। उसके अनुभव से सम्यग्दर्शन होता है, उसके अनुभव से ही चारित्रदशा और केवलज्ञान होता है।

* —ऐसे अभेद परमतत्त्व के अनुभव से पूर्व भेद के विकल्प आते हैं। शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय आदि के विचार में विकल्प आते हैं, उन विकल्पों का खेद है, उनकी उमंग नहीं है, उनके प्रति उत्सुकता नहीं है। शुद्ध स्वभाव की ही उमंग तथा उत्सुकता है। अरे, सीधे परमस्वभाव में पहुँचने की भावना है, उसी के अनुभव का लक्ष है; परंतु बीच में भेद-विकल्प आ जाते हैं, उनकी भावना नहीं है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

जनवरी : 1972 ☆ पौष : वीर नि० सं० 2498, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 9

शुद्ध रत्नत्रयरूप मार्ग

अहो, जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा हुआ शुद्धरत्नत्रयरूप मार्ग बहुत सुंदर है! अपने परम तत्त्व में सर्वथा अंतर्मुख और परद्रव्य से अत्यंत निरपेक्ष ऐसा यह सुंदर मार्ग सदा आनंदरूप है; हे भव्य! तू ऐसे मार्ग में भक्तिपूर्वक सदा लगा रहना। मिथ्यात्वादि में लगा हुआ अज्ञानी जीव ईर्षा से ऐसे सुंदर मार्ग की निंदा करे तो तू उससे खेदखिन्न होकर स्वरूप से चलायमान मत होना; तू तो परम भक्ति से मार्ग की आराधना में तत्पर रहना। ....तू अपने प्रयोजन की सिद्धि में तत्पर रहना। निंदा सुनकर अपने प्रयोजन से विचलित न होना। जगत से निरपेक्ष होकर तू अकेले ही अंतर में ऐसे सुंदर वीतरागमार्ग की साधना उत्साहपूर्वक करना, स्वरूप की साधना के उल्लासभाव में किंचित् न्यूनता नहीं लाना।

अहा, कितना सुंदर मार्ग! कैसा शांत-शांत मार्ग! ऐसे सुंदर मार्ग की प्रतीति करके उसकी भावना करनेयोग्य है, अर्थात् निजात्मा में उपयोग लगाकर शुद्धरत्नत्रयपरिणति प्रगट करने योग्य है।

जिज्ञासा होती है कि—जीव कैसा होगा ?

आचार्यदेव सात बोलों द्वारा जीव का अलौकिक स्वरूप समझाकर सुंदर स्वसमयपना कैसे होता है—वह बतलाते हैं।

[श्री समयसार गाथा 2 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]

(वीर संवत् 2498, मगशिर शुक्ला 1 से 4)

मंगलाचरणरूप से सिद्धभगवंतों को आत्मा में स्थापित करके अर्थात् सिद्धसमान साध्यरूप जो शुद्ध आत्मस्वरूप, उस ओर ज्ञान को एकाग्र करके, समयसार में सर्वप्रथम आचार्यदेव 'समय' अर्थात् जीव नामक वस्तु, उसका स्वरूप बतलाते हैं।

'समय' उसे कहा जाता है जो एकसाथ जानने और परिणमन करने—ऐसी दोनों क्रियारूप हो। जीववस्तु जानती है और परिणमित होती है, इसलिये वह समय है। जीव अनंत हैं; उन सब जीवों में जानने और परिणमन करने की दोनों क्रियाएँ एकसाथ सदा होती हैं। अब वे क्रियाएँ धर्मी को कैसी होती हैं और अज्ञानी को कैसी होती हैं—वे दोनों प्रकार भी इस दूसरी गाथा में बतलाये हैं। टीका में पहले सात बोलों से जीव का अलौकिक स्वरूप बतलाकर, पश्चात् उसकी अवस्था के दो प्रकार (स्वसमयपना और परसमयपना) किसप्रकार है, वह समझाया है।

धर्मी आत्मा अपनी निर्मल ज्ञानपर्याय में स्थित है

पर से भिन्न आत्मा की स्वानुभूति द्वारा जो आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुआ है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्रपर्याय में स्थित आत्मा स्वसमय है। आत्मा स्वयं परिणमित होकर अपनी पर्याय में आया है, इसलिये वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित है। ऐसी पर्यायरूप से परिणमित आत्मा, वह स्वसमय है; वह धर्मात्मा है।

— स्वोन्मुख हुई निर्मल पर्यायरूप जो परिणमित हुआ, वह आत्मा स्वसमय है।

— पर के साथ एकत्वबुद्धि से मिथ्यात्वभावरूप जो परिणमित हुआ, वह परसमय है।

पहले अज्ञानदशा में आत्मा मिथ्यात्वादि परभावोंरूप से परिणमन करके उनमें स्थित था, वह परसमय था; उसे पुद्गलकर्म में ही स्थित कहा है। अब पर से भिन्न स्व को जानकर स्वभाव में एकत्वरूप से परिणमित होकर जीव स्वयं स्वसमय हुआ है।

आत्मा अपनी पर्याय में एकत्वरूप परिणमन करता है और उसी में स्थित वर्तता है। धर्मी का आत्मा कहाँ है? पर में नहीं है, रागादि में नहीं है, स्वयं जिस निर्मल पर्यायरूप परिणमित हुआ है, उसी में वह स्थित है।—ऐसा स्वसमयरूप जीव, वह सच्चा जीव है। ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप आत्मा का जो सत्स्वभाव था, उस स्वभाव में एकत्वरूप से आत्मा अपने स्वभाव के सम्यक्भावरूप से परिणमित हुआ, जिससे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय में स्थित आत्मा स्वसमय है; वह सुंदर सुशोभित है।

परभावों को अनुभूति से भिन्न कहा, परंतु अनुभूति के साथ आत्मा को अभिन्न-एक कहा; आत्मा और उसकी अनुभूति को अभेद करके उसी को शुद्धनय कहा, उसी को जिनशासन कहा।—इसप्रकार आत्मा अपने जिस शुद्धभावरूप परिणमित हुआ, उसरूप ही वह है, अर्थात् उसी में स्थित हैं; उसे स्वसमय कहते हैं।

'जीव' अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन-आनंद, ऐसे अनंत स्वभावरूप एक वस्तु है; वह जब अपने में एकत्वरूप से ज्ञान-दर्शन-आनंदरूप से परिणमित हुआ, तब वह रागादि परभाव में स्थित नहीं रहा, अपने स्वरूप में ही तन्मय—स्थिर रहा, इसलिये वह स्वसमय है। ऐसे स्वसमयरूप से आत्मा शोभता है, वही एकत्व में शोभता हुआ सुंदर है। ऐसे आत्मा से भिन्न समस्त परभावों को पुद्गलकर्म के साथ तन्मय गिनकर, मिथ्यात्वादि अज्ञानभाव में स्थित जीव को 'पुद्गलकर्मप्रदेश में स्थित' कहकर 'परसमय' कहा है। ऐसे स्वसमय तथा परसमय—दोनों को जानकर, स्वयं अपने आत्मस्वभाव में एकत्वरूप से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित होना, वह तात्पर्य है।

❀ यहाँ एकत्वरूप से परिणमित होना और जानना, उसका नाम 'समय' है।

❀ जो स्व में एकत्वरूप से परिणमित हो और स्व को एकत्वरूप से जाने, वह स्वसमय है।

❀ जो पर में एकत्व मानकर रागादिरूप परिणमित हो और पर को एकत्वरूप से जाने, वह परसमय है।

❀ परसमयपना दु:खदायक है, उसे छोड़ने के लिये और सुखदायक ऐसा स्वसमयपना प्रगट करने के लिये, पर से अत्यंत भिन्न आत्मा कैसा है, उसका स्वरूप भलीभाँति जानना चाहिये।

समय अर्थात् जीव... वह जीव कैसा है, उसका सात बोलों से वर्णन करते हैं:—

(1) जीव उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकतारूप सत्तासहित है

जीव सदा अपने परिणमनस्वभाव में स्थित है, इसलिये वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकतारूप सत्तासहित है। जीव का अस्तित्व ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, इसलिये नित्यरूप स्थित रहकर अपने परिणामस्वरूप में वह वर्तता है; परिणाम से भिन्न नहीं वर्तता।—ऐसे स्वरूप से जीव का सत्पना है। इसप्रकार सर्वप्रथम ही जीव का सत्पना निश्चित किया।

'सत्' में द्रव्य-पर्याय दोनों का समावेश हो जाता है। परिणमनसहित नित्य स्थित रहनेवाला सत् आत्मा है। ऐसा सत् अपने से ही है, किसी अन्य के साथ उसे संबंध नहीं है;—ऐसे जीवतत्त्व को जो जानता है, वह अपने में एकत्वरूप से ज्ञान और परिणमन करके स्वसमयरूप होता है। यहाँ सर्वज्ञदेव द्वारा साक्षात् देखे हुए जीवतत्त्व का स्वरूप सात बोलों से समझाते हैं। एकांत ध्रुव या एकांत क्षणिक ऐसा कोई सत् तत्त्व नहीं है। सत् उसी को कहा जाता है जो सदा अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव में स्थित हो। उत्पाद-व्यय और ध्रुव, ऐसे तीन भाववाला जीव का अस्तित्व है; उसमें से एक भी भाव को निकाल देने से अस्तित्व ही नहीं रहता। उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभावरूप से मेरा अस्तित्व है और अपने स्वभाव में स्थित रहकर मैं ही अपने परिणामस्वभाव में स्थित हूँ—ऐसा धर्मी जानता है। नित्य स्थित रहना और पर्यायरूप से परिणमित होना—यह दोनों मेरा स्वभाव ही है; वह किसी अन्य के कारण नहीं। इसप्रकार सर्वप्रथम जीव का स्वाधीन उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप अस्तित्व निश्चित किया। अब, वह अस्तित्व किसप्रकार है, सो बतलाते हैं। क्योंकि अस्तित्व तो जीव के अतिरिक्त अन्य अजीव पदार्थों में भी है, इसलिये जीव के अस्तित्व में क्या विशेषता है, वह बतलाकर जीव को अन्य पदार्थों से भिन्न बतलाया है।

(2) जीव चैतन्यस्वरूप है

जीववस्तु सत् है, वह सत्पना कैसा है? तो कहते हैं कि चैतन्यरूप से प्रकाशमान

आत्मा दर्शन-ज्ञानस्वरूप है। दर्शन और ज्ञान की ज्योति द्वारा जो स्वयं प्रकाशमान है, वह जीव है। ऐसी ज्ञानज्योति में राग नहीं आता, कर्म नहीं आता, शरीर नहीं आता। ज्ञान-दर्शनमय चैतन्यप्रकाशरूप से मेरा अस्तित्व है—ऐसा धर्मी जीव अनुभव करता है। मात्र उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो जड़ में भी हैं परंतु जीव के उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो चैतन्यभावरूप हैं; आत्मा सदा चैतन्यरूप से प्रकाशमान है।

अहा, चेतनस्वभावरूप से जो प्रकाशित हो, उसी को जीव कहा। जो रागरूप वर्ते, वह जीव—ऐसा नहीं कहा है। राग के बिना भी जीव ज्ञानरूप से प्रकाशित होता है, ज्ञान वह कहीं उपाधि नहीं है, जीव का स्वरूप ही है; विकल्प और राग हो, वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं है। चैतन्यता कहीं राग के कारण नहीं है; राग से भिन्न चैतन्यता है, राग के अभाव में भी वह प्रकाशित होती है, इसप्रकार जीव चैतन्यसत्तारूप है।

(3) अनंत धर्मों में फैला हुआ एक धर्मी—ऐसा जीवद्रव्य है

आत्मा सत् है और चैतन्यस्वरूप है; तो क्या उसमें एक ही धर्म है ?—नहीं; चैतन्यभाव में अनंत धर्मों का समावेश होता है; जीव अपनी चेतनासहित अनंत धर्मों में व्याप्त होकर फैला हुआ एक द्रव्य है। गुण और पर्यायें अनंत हैं, उन अनंत धर्मों में एकरूप से आत्मा विद्यमान है, इसलिये धर्मी द्रव्य एक है; अपने अनंत धर्मों में एकसाथ रहनेपर भी वह एक द्रव्यरूप से ही विद्यमान है; अनंत धर्मों में रहने से आत्मा कहीं खंड-खंडरूप नहीं हो गया है, वह एक द्रव्यरूप से ही प्रगट है। स्वयं एक, तथापि अनंत धर्मों में एकसाथ रहने की जिसकी अंचित्य शक्ति है—ऐसा आत्मा है। नित्यता उसका धर्म है और परिणमन भी उसका धर्म है;—इसप्रकार अनंत धर्मस्वरूप एक वस्तु है। अहा! अपने अनंत धर्मों को एकरूप लक्ष में ले, वहाँ आत्मा राग से भिन्न हो जाता है और गुणभेद के विकल्पों से भी पार होकर अभेद आत्मा अनुभव में आता है। 'मुझमें अनंत धर्म हैं'—ऐसा स्वीकार स्वसन्मुख ज्ञान द्वारा ही होता है। अनंत धर्मों को एकसाथ (गुणभेद के विकल्प रहित) लक्ष में-प्रतीति में ले ले, उस ज्ञान की शक्ति कितनी ? राग में अटका हुआ ज्ञान अनंत धर्मों का सच्चा स्वीकार नहीं कर सकता। राग जितना ही मैं हूँ—ऐसी बुद्धि में अटका हुआ ज्ञान, रागरहित अनंत गुणों को स्वीकार कैसे सकेगा ? अनंत जीव, प्रत्येक जीव में अपने अनंत गुण स्वाधीन, यह बात जैनशासन में ही है और इसका स्वीकार करनेवाले जीव को अपूर्व भेदज्ञान होता है।

अरे जीव! तू कैसा है? तेरा स्वरूप कैसा है? उसका यह वर्णन वीतरागी संत तुझे सुनाते हैं, अंतर में बारंबार उसके प्रेम और उत्साहपूर्वक तू अपने स्वरूप को पहिचान!

(4) क्रमरूप वर्तती पर्यायें, अक्रमरूप रहते गुण—वह जीव का स्वभाव है।

अनंत गुण-पर्यायें वह जीव का स्वभाव ही है; उनमें गुण एकसाथ रहनेवाले अक्रम हैं और पर्यायें उत्पाद-व्ययरूप से वर्तती हुई क्रमवर्ती हैं। तीसरे बोल में द्रव्यपना कहकर अनंत धर्मों का उसमें समावेश किया; यहाँ गुण-पर्यायपना कहते हैं। गुण और पर्यायें वे दोनों आत्मा का स्वभाव ही है। क्रमशः होनेवाली पर्यायें भी आत्मा का स्वभाव ही है; अपने स्वभाव से ही वह क्रमवर्ती पर्यायरूप परिणमित होता है और अनंत गुणरूप से स्थित रहता है। एक वस्तु में द्रव्य-गुण-पर्याय, ऐसे भेद का विचार आत्मा का स्वरूप निश्चित करने के लिये होता है, परंतु आत्मा की साक्षात् अनुभूति में द्रव्य-गुण-पर्याय इन तीन का भेद नहीं है, अर्थात् विकल्प नहीं है; वहाँ तो अपनी आनंदमय चैतन्यपरिणतिरूप परिणति होकर उसमें आत्मा अभेदरूप से स्थिर हुआ है; वह स्वसमय है।

आत्मा परिणमित तो सदा होता ही है, परंतु जब वह स्वयं अपने को एकत्वरूप से जानकर परिणमित हो, तब वह सम्यक्त्वादि अपने शुद्धभावरूप परिणमित होकर उसी में स्थित होता है और उसे स्वसमय कहा जाता है। ऐसा स्वसमयपना, वह सुंदर है, उसमें एकत्वरूप से आत्मा शोभता है। आत्मा में द्रव्य-गुण-पर्यायों की, सामान्य-विशेष भावों की अचिंत्य गंभीरता भरी है; उसकी पहिचान करने की यह बात है।

(5) स्व-पर को प्रकाशित करे, ऐसे एकरूप चैतन्यप्रकाशमय जीव है।

आत्मा स्व को, पर को, जड़ को, चेतन को—सर्व पदार्थों को अपनी चैतन्यशक्ति से प्रकाशित करता है; सर्व को जानने पर भी स्वयं तो एक चैतन्यप्रकाशरूप ही रहता है। पर को—जड़ को जानते हुए वह जड़रूप नहीं हो जाता, राग को जानते हुए रागरूप नहीं हो जाता; परंतु जड़ को या राग को जाननेपर भी चैतन्यभाव स्वयं तो एक चैतन्यभावरूप ही रहता है। अनेक पदार्थों को जानने पर भी चेतना अपने एकत्व को नहीं छोड़ती। ऐसे स्व-पर प्रकाशक चैतन्यसामर्थ्यवान पदार्थ, वह जीव है।

चेतना पर से भिन्न है, तथापि भिन्न रहकर भी वह पर को जान लेती है—ऐसी उसकी

शक्ति है; तथा वह चेतना स्वयं अपने को भी अपने में तन्मय होकर जानती है। स्व-पर अनेक पदार्थों को जाने, तथापि स्वयं चेतनास्वरूप में ही तन्मय रहने के कारण आत्मा एकरूप ही है; अनेक को जानने से स्वयं अनेकरूप नहीं हो जाता। सर्व को जानते हैं, ऐसे सामर्थ्य के कारण सर्वज्ञ कहलाते हैं; वह सर्वज्ञता आत्मा है, आत्मा स्वयं निश्चय से वैसी सर्वज्ञपर्यायरूप हुआ है; वह भी जीव का स्वभाव है। अनंत स्वभावों से गंभीर ऐसा जीवद्रव्य है। मैं ही ऐसी शक्तिवाला हूँ कि जिसका ज्ञान स्व-पर को जाननेरूप परिणमित होता है और तथापि अपने एकत्व को नहीं छोड़ता—ऐसा विश्वप्रकाशी अद्वितीय चैतन्यदीपक जीव है। पर्याय को-राग को-जड़ को जानना, वह कोई दोष नहीं है, उन्हें जानने से कहीं चैतन्यपर्याय मलिन नहीं हो जाती। सर्व को जानना, वह तो चैतन्य की निर्मलता का सामर्थ्य है, सहज स्वरूप है।—ऐसे अपने जीव को तू जान।

(6) अन्य द्रव्यों से असाधारण ऐसे चैतन्यस्वभावरूप जीव है।

जगत में जीव के अतिरिक्त अन्य अजीव पदार्थ भी हैं—जो कि चेतना रहित हैं; उन सर्व पदार्थों से जीव को अत्यंत भिन्नता जीव के चेतनालक्षण द्वारा निश्चित होती है। चेतनता, वह जीव का असाधारण स्वभाव है। अन्य पाँच द्रव्यों के जो असाधारण-विशेषगुण, वे जीव में नहीं हैं; और जीव का असाधारण चेतनागुण किसी अन्य में नहीं है; इसप्रकार जीव अन्य पाँचों प्रकार के अजीवद्रव्यों से अत्यंत भिन्न है। उसकी पर से अत्यन्त भिन्नता और अपने ज्ञानस्वभाव के साथ एकता है। ऐसे स्वभाव से एकत्व-विभक्तरूप से वह शोभता है; जीव को ऐसे असाधारण चैतन्यस्वरूप से पहिचानने पर राग से भी भिन्न परिणमन होता है।

जीव के सिवा अन्य द्रव्य जगत में हैं अवश्य, जीव उन्हें जानता भी है, परंतु वे अन्य द्रव्य जीव के अस्तित्व में नहीं हैं। जीव अपने ज्ञानादि स्वधर्मों के अस्तित्व में ही हैं। ऐसे अपने भिन्न अस्तित्व को जानकर भेदज्ञान करनेवाला जीव स्वद्रव्यसन्मुख सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायरूप परिणमित होता है।

(7) जीव चैतन्यस्वभाव से टंकोत्कीर्ण है

इस एक आत्मा के अतिरिक्त अन्य अनंत जीव तथा अनंत अजीव पदार्थ इस जगत में विद्यमान हैं; ऐसे अनंत जीव-अजीव पदार्थों के साथ एकक्षेत्र में स्थित होने पर भी चैतन्यरूप

ही रहता है; चैतन्य मिटकर कभी जड़ नहीं होता; इसलिये जीव सदा अपने टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वरूप में विद्यमान है।

अपना ऐसा स्वरूप भूलकर, अनादिकाल से चार गतियों के भयंकर दु:खों में भ्रमण किया, तथापि चैतन्यस्वभाव ज्यों का त्यों रहा है; जीव के ज्ञान-आनंदस्वभाव का एक भी अंश कम नहीं हुआ, टंकोत्कीर्ण ज्यों का त्यों विराजमान है। एक क्षेत्र में रहने पर भी वह पर के साथ एकमेक नहीं हुआ है, तथा पर्याय में विकृति होने पर भी मूल स्वभाव का नाश नहीं हुआ है, स्वभाव अन्यथा नहीं हुआ है। अहा, जीव का स्वभाव तो देखो! ...ऐसे अपने जीव स्वभाव को पहिचानना ही सच्चा करनेयोग्य कार्य है; बाकी संसार में सब असार है।

इसप्रकार जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् है, जो चैतन्यज्योति है, जो अपने अनंत धर्मों में विद्यमान है, जो गुण-पर्यायवान है, जो स्व-परप्रकाशक है, जो अन्य द्रव्यों से भिन्न असाधारण चेतनागुणरूप है और जो सदा अपने स्वरूप में टंकोत्कीर्ण स्थित है—ऐसे विशेषणोंवाला जो जीवपदार्थ है, उसी को 'समय' कहा जाता है, क्योंकि वह एकत्वरूप से जानना और परिणमन करना—दोनों क्रियाएँ एकसाथ करता है।

(8) स्वसमय और परसमय—उनमें स्वसमय की सुंदरता।

जीव अर्थात् 'समय' नामक पदार्थ कैसा है, वह सात बोलों से बतलाया। प्रत्येक जीव में जानने और परिणमन करने की दोनों क्रियाएँ एकसाथ होती हैं; परंतु उनमें दो प्रकार हैं—ज्ञानी अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा को ही स्व-रूप जानता है और स्व में ही एकत्वबुद्धि से सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होकर उसमें स्थिर होता है, इसलिये वह स्वसमय है; और अज्ञानी स्व को भूलकर पर को एकत्वरूप से जानता है तथा मोहादि परभावों में एकत्वरूप परिणमित होकर उसमें स्थिर होता है, इसलिये वह परसमय है। इसप्रकार जीव नामक समय को स्वसमय और परसमय—ऐसे दो प्रकार होते हैं। उन्हें जानकर स्वसमयपना प्रगट करना और परसमयपना छोड़ना; क्योंकि स्वसमयरूप एकत्वरूप से ही आत्मा शोभता है, उसी में आत्मा की सुंदरता है; परसमयपना, वह आत्मा को नहीं शोभता, उसमें तो विसंवाद है, बंधन है।

जीव को स्वसमयपना कब होता है ?—कि जब अपने आत्मस्वरूप की प्रतीति करके स्व-पर का भेदज्ञान करे, तब जीव पर से भिन्न अपने दर्शन-ज्ञानस्वभाव में निश्चल

परिणतिरूप से परिणमित होता हुआ उसमें एकत्वरूप से स्थित होता है, तब वह स्वसमय है। अहा, यह भेदज्ञानज्योति तो त्रिलोकप्रकाशक केवलज्ञानदीप को प्रज्वलित करनेवाली है। अहा, जो केवलज्ञान प्रदान करता है, ऐसे भेदज्ञान की शक्ति का क्या कहना! एक ओर अपना ज्ञान-दर्शनमय स्वभाव और दूसरी ओर सर्व परद्रव्य (-देव-गुरु-शास्त्र-तीर्थ-विकल्पादि सब),—इसप्रकार अत्यंत भिन्नता जाने, तब परद्रव्य में एकाग्रता छोड़कर स्वद्रव्य में एकता करे और उसे स्वसमयपना हो। अपने चैतन्यस्वभाव से अधिक जगत के किसी अन्य पदार्थ की या रागादि परभाव की महिमा आये तो वह जीव उस परपदार्थ से छूटकर स्वतत्त्व की ओर उन्मुख नहीं हो सकेगा, उसे सच्चा भेदज्ञान नहीं होगा। यहाँ तो भेदज्ञान करके स्वसमय होकर जो केवलज्ञान की ओर चलने लगा है, उसकी बात है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा का स्व है, उसमें स्थित वह स्वसमय है। जिसे कहीं भी पर में सुखबुद्धि हो, वह जीव पर से भिन्न होकर स्व में स्थित नहीं हो सकता। जो स्व और पर की भिन्नता को नहीं जानता, वह अज्ञानभावरूप परिणमित होता है, उसे सम्यक्त्वादि में प्रवर्तनरूप स्वसमयपना नहीं होता; उसे तो पुद्गलकर्म के प्रदेश में स्थित कहा है। जो चेतना में स्थित नहीं, वह कर्म में ही स्थित है। दो भाग करके बात कही है—जो अपने ज्ञानस्वभाव में स्थित है, उसे कर्म की ओर के किसी भी भाव में एकत्वबुद्धि नहीं रहती; और जिसे पर की ओर के किसी भी भाव में एकत्वबुद्धि है, वह जीव अपने ज्ञानस्वभाव में एकता नहीं कर सकता।

अरे जीव! तू अपने तत्त्व को जानकर, पर से भिन्नता और स्व में एकता कर! ऐसे अपूर्व भेदज्ञान से तुझे अल्पकाल में केवलज्ञान एवं सिद्धसुख की प्राप्ति होगी। जिसने सिद्धभगवान को आत्मा में स्थापित किया, उसे स्व-पर का ऐसा भेदज्ञान होगा ही। सिद्ध में कर्म का या राग का किंचित् संबंध नहीं है, उसीप्रकार इस आत्मा का स्वभाव भी कर्म और रागरहित है; ऐसे अपने आत्मा को जानकर स्वयं अपने में एकत्वरूप से परिणमन करने पर आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हो जाता है। जिस रूप परिणमित हुआ, उसी में वह स्थित हुआ; सम्यक्त्वादि स्वभावरूप से परिणमित होकर उसमें स्थित हुआ, वह स्वसमय हुआ। वह आत्मा स्वयं अपने स्वभाव को ही स्व-रूप से जानता है और उसी में एकत्वरूप से परिणमन करता है।—ऐसी दशा भेदज्ञान द्वारा ही होती है। इसलिये जीव का यथार्थ स्वरूप जानकर पर से भिन्नता की प्रतीति करना चाहिये।—ऐसा भेदज्ञान, वह केवलज्ञानविद्या को उत्पन्न करता है।

जगत के सर्व पदार्थ स्वयं अपने गुण-पर्याय में ही विद्यमान हैं। जीव वस्तु भी अपनी पर्याय में रहती हैं। जो अपनी निर्मल पर्याय में वर्तता है, वह स्वसमय है; जो स्व-पर को एक मानता हुआ अज्ञान पर्याय में वर्तता है, वह परसमय है। चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्वादि जितनी शुद्ध अनुभूति वर्तती है, उसमें स्थित आत्मा स्वसमय है। अहा! आत्मा अनुभूति में आया, उसमें तो अनंत गुणों का समावेश हो जाता है। स्वसन्मुख अनुभूति में पूर्ण आत्मा समा जाता है। स्व-पर का भेदज्ञान करके, शुद्धपरिणति के साथ एकत्वरूप परिणमित आत्मा, वह स्वसमय है। जैसा ज्ञानस्वभाव है, वैसा परिणमन हुआ, उसमें तो आत्मा शोभता है, वह तो आत्मा का स्वरूप है। परंतु ज्ञानस्वभाव से विरुद्ध ऐसे मोहादि परभावरूप परिणमित होना, वह परसमयपना है, उसमें आत्मा की शोभा नहीं है।

एकत्वपने में आत्मा की शोभा है, परंतु संसारी जीवों को उस एकत्व की अनुभूति दुर्लभ है; दुर्लभ होने पर भी ज्ञान की यथार्थ उपासना द्वारा उसकी प्राप्ति हो सकती है। इस समयसार में आचार्यदेव ने आत्मा के अद्भुत वैभव से वह एकत्वस्वरूप बतलाकर उसका स्वानुभव कराया है। शुद्ध आत्मा की स्वानुभूति महा आनंदमय है और वही इस समयसार के अभ्यास का फल है।

त्रैकालिक भूतार्थस्वभाव के सन्मुख होकर उसका स्वीकार करने से आत्मा स्वयं अपने में एकत्व से सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होता है। ज्ञानस्वभाव में तन्मयरूप ज्ञानभाव से परिणमन करनेवाला आत्मा, वह सच्चा आत्मा है और क्रोधादि परभावों में तन्मय होकर अज्ञानभावरूप से परिणमित आत्मा, वह अनात्मा है, उसे आत्मभाव की प्राप्ति नहीं हुई है।—इसप्रकार जीव को एक स्वसमयपना और दूसरा परसमयपना—ऐसी दो अवस्थाएँ हैं; उनमें स्वसमयपना, वह सुंदर है। अनादि से परसमयपना है, वह छूटकर स्वसमयपना हो—ऐसी बात इस समयसार में बतलायी है... उसे हे भव्य जीवो! तुम बहुमानपूर्वक सुनकर लक्ष में लेना।

ज्ञानभावना आनंददायक है

[श्री नियमसार गाथा 170 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]

❀ ज्ञान आत्मा का सच्चा स्वभाव है, उसमें राग नहीं है। ऐसे ज्ञानस्वभावी आत्मा की भावना ही मोक्ष का कारण है।

❀ ज्ञान, वह आत्मा की स्वभाव-क्रिया है। आत्मा स्वयं स्वभाव से उस क्रियारूप होता है। ज्ञानक्रिया और आत्मा को तादात्म्यता है, एकरूपता है, इसलिये वह ज्ञान द्वारा स्वयं अपने को जानता है। आत्मा कर्ता और ज्ञान उसका साधन—ऐसा कहने पर भी कर्ता और करण दोनों अभेद हैं, भिन्न नहीं।

❀ पुण्य-पाप-विकल्प, वह विभाव-क्रिया है। आत्मा के स्वभावभावरूप वह क्रिया नहीं है; उस विभाव-क्रिया को आत्मा के ज्ञानस्वभाव के साथ एकरूपता—तादात्म्यता नहीं है, ज्ञान से भिन्न जाति होने से वास्तव में संयोगरूप संबंध है। इसलिये उस विकल्परूप विभावक्रिया द्वारा आत्मा जानने में नहीं आता। पर से भिन्न होकर अपने आत्मा के साथ एकमेक हो, वह ज्ञान आत्मा को जान सकता है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव और रागादिभाव, उनमें विशेषता है—भिन्नता है, दोनों के बीच समानता नहीं, परंतु बहुत बड़ा अंतर है।

❀ ज्ञान आत्मा के साथ तादात्म्यरूप से उसे जानता है, राग का आत्मा के साथ तादात्म्य नहीं है, और वह आत्मा को जानता भी नहीं है। इसप्रकार राग और ज्ञान में अत्यंत भिन्नता है।

❀ इसप्रकार ज्ञान और विभाव का भेदज्ञान करके ज्ञान द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना, वह वास्तव में स्वभाववाद है। ज्ञान और आत्मा का भेद मानना, वह विभाववाद है।

❀ ज्ञान, वह वास्तव में आत्मा का स्वरूप है, ज्ञान स्वयं अपने में एकाग्र रहकर अपने को तथा समस्त पदार्थों को जानता है। ज्ञान स्वयं आत्मा के स्वभाव में निश्चल है। ऐसे ज्ञान की भावना करना, वह अचल मोक्ष-आनंद का उपाय है। मोक्ष के आनंद की

अभिलाषा हो, उन्हें ऐसी भावना करनी चाहिये। ज्ञान की भावना कहो या ज्ञानस्वरूप आत्मा की भावना कहो, उसके बीच में कहीं राग नहीं आता, राग द्वारा ज्ञान की भावना नहीं होती, राग से भिन्न होकर, ज्ञानरूप होकर ज्ञान की भावना होती है और उस भावना द्वारा पूर्ण ज्ञान-आनंदरूप मोक्षफल की प्राप्ति होती है। ज्ञानभावना, वह मार्ग है और मोक्ष, वह मार्ग का फल।—इन दोनों का ज्ञान में समावेश है।

❀ चौथे गुणस्थान में भेदज्ञान होने पर ज्ञानभावना प्रारंभ हो गई है; वहाँ जो ज्ञानपरिणाम हैं, वे अपने स्वरूप में निश्चल हैं, वे राग के साथ एकमेक नहीं, भिन्न ही हैं। यही ज्ञानधारा वृद्धिंगत होते-होते पूर्ण होती है, तब अविनाशी आनंदमय मोक्षफल प्रगट होता है। अत: मोक्ष के अभिलाषी जीवों को ज्ञानभावना निरंतर भाना चाहिये।

❀ ज्ञानभावना में धर्मी को आनंद का वेदन है, उस आनंद में उपसर्ग का अभाव है। जिसप्रकार सिद्ध भगवान को मोह या उपसर्ग नहीं है, उसीप्रकार धर्मी को भी शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप ज्ञानभावना में मोह नहीं है, उपसर्ग नहीं है। वाह देखो, यह साधक की ज्ञानभावना! मोह और उपसर्ग उस ज्ञानभावना से बाह्य है।

❀ ऐसी अपूर्व ज्ञानभावना भानेवाला साधक कहता है कि अहो! केवलज्ञान प्रगट हो, उस समय की क्या बात!—अभी साधकदशा में भी हमारा ज्ञान सीधा-स्वसंवेदन प्रत्यक्षपूर्वक अपने आत्मा को स्पष्ट जानता ही है; अभी हमारा ज्ञान भले ही मति-श्रुतरूप हो, तथापि आत्मा के स्वभाव में एकत्वरूप परिणमन करता हुआ आत्मा को अवश्य जानता है। ज्ञान सीधा आत्मा को जानता है; इसलिये बीच में कोई विकल्प-राग-इन्द्रिय के अवलंबन को वह स्वीकार नहीं करता। ज्ञान स्वयं आत्मा का शुद्धस्वरूप है, वह स्वयं अपने को न जाने, ऐसा कैसे हो सकता है? ज्ञान कहीं आत्मा से भिन्न नहीं है कि वह आत्मा को न जाने।

❀ अंतर में ज्ञानभावना द्वारा, ज्ञान को सीधा आत्मा में एकाग्र करके आत्मा को साक्षात् जानना ही लाखों बातों का सार है। वही मोक्ष का कारण है, वही स्वभाव है। अहा, कोई अचिंत्य ज्ञानस्वभाव है कि जो आत्मा में तन्मय रहकर आत्मा को साक्षात् जानता है; आत्मा को जाननेवाला वह ज्ञान सदैव आनंदमय अमृत का भोजन करनेवाला है,

स्वयं सहज परम आनंदरूप है, उसमें किन्हीं रागादि का प्रवेश नहीं है।

❀ राग आत्मा को नहीं जान सकता, क्योंकि वह आत्मा से भिन्न है।

❀ ज्ञान स्वयं आत्मा को साक्षात् जानता है, क्योंकि वह आत्मा का अभिन्न स्वभाव है।

हे जीव! ऐसे ज्ञानस्वभावी आत्मा की तू भावना कर।
उस भावना द्वारा तुझे मोक्ष के परम आनंद का अनुभव होगा॥
स्व में तन्मय हुए बिना ज्ञान स्व को नहीं जान सकता।
पर में तन्मय हो तो ज्ञान पर को नहीं जान सकता॥

आत्मा ऐसी स्ववस्तु है कि उसमें तन्मय होकर ही ज्ञान उसे जानता है, उससे भिन्न रहकर ज्ञान उसे नहीं जान सकता। राग तो स्वभाव से भिन्न है, अत: वह आत्मस्वभाव को नहीं जान सकता।

राग तो ज्ञान से भिन्न होने के कारण, उससे भिन्न रहकर ही ज्ञान उसे जानता है; परंतु यदि उसमें तन्मय हो तो वह राग को नहीं जान सकता।

वाह! आत्मा और राग का कैसा भेदज्ञान है!

वह भेदज्ञान आत्मा में तो एकता करता हे और राग को पृथक् करता है;—इसप्रकार दोनों को भिन्न-भिन्न कर देता है और राग से भिन्न ज्ञानानंदमय आत्मा को साधता है—अनुभव करता है। ज्ञान स्व को तो तन्मय होकर जानता है, और पर को उससे भिन्न रहकर जानता है,—ऐसा उसका स्वभाव है,—इसलिये स्व-आत्मा का ज्ञान वह निश्चय है और रागादि पर का ज्ञान वह व्यवहार है।

निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता, अर्थात् आत्मा को जाने बिना पर का सच्चा ज्ञान नहीं होता; स्वपूर्वक ही पर का सच्चा ज्ञान होता है।

सच्चा ज्ञान जानता है कि मेरा स्व वह आत्मा है, रागादि कहीं मेरा स्व नहीं है, मुझसे तो वह पर हैं-भिन्न हैं।

—ऐसे भेदज्ञान द्वारा धर्मी जीव आनंद से मोक्ष को साधते हैं।

❀❀❀❀

'निजभावना के हेतु मैंने नियमसार शास्त्र की रचना की है'

परमेश्वर भागवतशास्त्र नियमसार

[वीर सं. 2498, पौष शुक्ला-1]

[नौवीं बार प्रवचनों का प्रारंभ]

आठ बार पूर्ण होकर यह भागवतशास्त्र नौवीं बार प्रारंभ होता है। आचार्यदेव कहते हैं कि मैं निजभावना के हेतु यह शास्त्र रचता हूँ, और जिनेन्द्र भगवान का उपदेश यथार्थरूप से जानकर मैं इस शास्त्र में मोक्षमार्ग का और उसके फलरूप मोक्ष का कथन करूँगा। इसलिये हे श्रोताओं! तुम भी अपने परम तत्त्व में अत्यंत अंतर्मुख होकर, निज-आत्मा की भावना करना। परमतत्त्व की भावना द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आनंदमार्ग प्रगट होगा, और उसके फलरूप महा आनंदरूप निर्वाण की प्राप्ति होगी।

अनंत ज्ञान-दर्शन हिन्हें प्रगट हो गये हैं—ऐसे परमात्मा महावीर जिनेन्द्र को नमस्कार करके इस नियमसार का प्रारंभ होता है।

हे सर्वज्ञ जिन-परमात्मा! मेरे ज्ञान में तेरा अस्तित्व होने से मैं अब अन्य मोही जीवों को क्यों भजूँ? तेरा परम वीतराग सर्वज्ञस्वरूप जैसा है, वैसा मेरे ज्ञान में आ गया है, तो मैं अब तेरी उपस्थिति में अन्य मोहमुग्ध संसारियों को क्यों नमन करूँ? प्रभु! भव को जीतनेवाले तो आप एक ही हैं और मैं भी भव से मुक्त होनेवाले मार्ग को साध रहा हूँ, जिससे आप ही मेरे वंद्य हो। प्रभु! भव का अभाव हो, ऐसा सुंदर मार्ग आपने ही दर्शाया है। आपने स्वयं भव का अभाव करके, भव के नाश का उपाय बतलाया है, जिससे मैं आपको नमस्कार करके इस नियमसार द्वारा निजभावना भाता हूँ।

वीतरागता और सर्वज्ञता द्वारा ही आत्मा की शोभा है। समवसरणादि संयोगों द्वारा भगवान शोभायमान हैं—ऐसा नहीं कहा, परंतु राग-द्वेष-मोहरहित वीतरागता द्वारा और

सर्वज्ञता द्वारा ही भगवान सुशोभित हैं—ऐसा कहा है। अहा, आत्मा की ऐसी पूर्ण पर्याय कैसी महान है! उसको निर्णय में ले तो परिणति रागादि परभावों से छूट जाये और स्वभाव सन्मुख परिणमन प्रगट हो, वही मंगल है।

अहा, ऐसे महान वीतराग भगवान! आप विराजमान हैं, फिर मुझे किसका काम? इतने महान वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा को मैंने अपने ज्ञान में स्वीकार किया तो अब मेरा ज्ञान राग में क्यों रुकेगा? वह राग को क्यों भजेगा? वह तो राग से पृथक् होकर परम वीतराग-मार्ग में परिणमन करेगा।

प्रथम गाथा में आचार्यदेव ने वीरनाथ जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके असाधारण मंगल किया है, वे कहते हैं कि अहो! उत्कृष्ट अनंत ज्ञान-दर्शनस्वभाव को प्राप्त भगवान वीर-जिन को नमस्कार करके मैं श्रुतकेवली और केवली भगवंतों द्वारा कहा हुआ यह नियमसार कहूँगा। निमयसार में मोक्ष का मार्ग और उसका फल बतलाऊँगा। समयसार की टीका में भी केवली और श्रुतकेवली दोनों की बात ली है और यहाँ नियमसार में तो मूलसूत्र में ही 'केवलि-सुदकेवली भणिदं' ऐसा स्पष्ट कहा है। विदेहक्षेत्र में केवली और श्रुतकेवली भगवंत साक्षात् विराजमान हैं, उन्हें प्रत्यक्ष देखकर और उनकी वाणी का श्रवण करके आचार्यदेव को इन समयसार, नियमसार आदि परमागमों की रचना की है। वे आत्मा का शुद्धस्वरूप बतलाकर उसके आश्रय से शुद्धरत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग प्रगट कराते हैं।

अहा, इस नियमसार में तो आत्मा में से अनादि-अंधकार को दूर करके ज्ञानप्रकाश प्रगट करे, ऐसी अलौकिक बात है! देखो, आज (पौष शुक्ला-1 को) नियमसार का प्रवचन प्रारंभ किया और बाह्य में अंधकार मिटकर आज प्रकाश प्रारंभ हुआ है। (भारत-पाकिस्तान युद्ध के कारण 'ब्लेक आउट' हुआ था, उसमें विजयपूर्वक आज ब्लेक आउट दूर होकर प्रकाश चालू हुआ और नियमसार भी आज ही प्रारंभ हुआ है।) चैतन्य के पराक्रम में विक्रांत ऐसे वीरनाथ जिन ने चैतन्य की वीरता द्वारा कर्मों पर विजय प्राप्त की और मोहांधकार दूर करके केवलज्ञान-प्रकाश प्रगट किया। ऐसे विजेता वीरनाथ वर्द्धमान जिनेन्द्र महा देवाधिदेव तीर्थंकर, उनको नमस्कार करते हैं।

नियम अर्थात् रत्नत्रय, उनमें सारभूत ऐसे शुद्ध रत्नत्रय, उनका प्रतिपादन करनेवाला

यह शास्त्र सब जीवों को हितकर है। शुद्धरत्नत्रयरूप मार्ग का और उसके फल का कथन जिनशासन में है। देखो, लोग कहते हैं कि जिनशासन में कर्म का और कर्मफल का ही कथन है। यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि जिनशासन में तो शुद्ध रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का तथा उसके फल का ही कथन है और वह मार्ग मैं इस नियमसार में कहूँगा; तथा उसके फलरूप मोक्ष का स्वरूप कहूँगा। भगवंतों ने जो कहा है, वही मैं कहूँगा।

नियमसार अर्थात् शुद्धरत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग, वह कैसा है ? कि निज परमात्मतत्त्व में सर्वथा अंतर्मुख है और पर से अत्यंत निरपेक्ष है। व्यवहाररत्नत्रय में तो पर की अपेक्षा है, वे तो रागवाले हैं, वे शुद्ध नहीं हैं, साररूप नहीं हैं। शुद्ध और साररूप तो अपने परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-आचरण हों, वही हैं, वे रागरहित हैं, पर से निरपेक्ष हैं। ऐसे रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग जिनशासन में कहा है। आत्मा में अंतर्मुख होकर निजभावना द्वारा अतीन्द्रिय आनंद सहित ऐसा मोक्षमार्ग प्रगट हो, वही इस शास्त्र का तात्पर्य है। ऐसी निजभावना के हेतु इस नियमसार की रचना है। उसमें आत्मा के परम शुद्ध स्वभाव की भावना का अद्भुत-अलौकिक वर्णन है। वह भावना अर्थात् अंतर्मुख परिणति करने योग्य है।

ध्येय की सिद्धि

* हे जीव ! अपना ध्येय ऊँचे से ऊँचा रखना। ध्येय को जरा भी निर्बल मत बनाना।
* उस ध्येय की उत्तमता, उसकी महानता, उसकी गंभीरता और उसे साधने का भगीरथ प्रयत्न-इनको भी लक्ष में रखना।
* ध्येय जैसा महान है, वैसा ही उसे साधने का पुरुषार्थ भी महान है, उसे ध्यान में रखकर उस प्रयत्न में जो-जो त्रुटियाँ तुझसे हों, उनका संशोधन करना। अल्प प्रयत्न में संतुष्ट मत हो जाना।
* ध्येय को दृष्टि समक्ष रखकर अपने प्रयत्न को उस ओर ही आगे बढ़ाते जाना।
* ध्येय भूलना मत, प्रयत्न को छोड़ना नहीं। ऐसा करने से अवश्य ध्येय की सिद्धि होगी।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथा

सम्यक्तयुत आचार ही संसार में एक सार है,
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ-सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिये,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिये।

(5) उपगूहन-अंग में प्रसिद्ध जिनेन्द्रभक्त सेठ की कथा

[पहली नि:शंक अंग में प्रसिद्ध अंजनचोर की कथा, दूसरी नि:कांक्ष अंग में प्रसिद्ध सती अनंतमती की कथा, तीसरी निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध उदायन राजा की कथा और चौथी अमूढ़दृष्टि अंग में प्रसिद्ध रेवतीरानी की कथा आपने पढ़ी; अब पाँचवीं कथा आप यहाँ पढ़ेंगे।]

पादलिप्तनगर में एक सेठ रहते थे, वे महान जिनभक्त थे; सम्यक्त्व के धारी थे, तथा धर्मात्माओं के गुणों की वृद्धि और दोषों का उपगूहन करने के लिये प्रसिद्ध थे। पुण्य के प्रताप से वे अपार वैभव-संपन्न थे। उनके सात मंजिलवाले महल के ऊपरी भाग में एक अद्भुत चैत्यालय था, जिसमें रत्न से बनी हुई भगवान पार्श्वनाथ की मनोहर मूर्ति थी, जिसके ऊपर रत्नजड़ित छत्र थे। उन छत्रों में एक नीलम-रत्न अत्यंत मूल्यवान था जो अंधकार में भी जगमगाता रहता था।

अब, सौराष्ट्र के पाटलिपुत्र नगर का राजकुमार—जिसका नाम सुवीर था तथा कुसंग के कारण जो दुराचारी और चोर हो गया था; उसने एकबार सेठ का जिनमंदिर देखा और उसक मन ललचाया—भगवान की भक्ति से नहीं, परंतु मूल्यवान नीलम-रत्न की चोरी करने के भाव से।

उसने चोरों की सभा में घोषणा की कि जो कोई जिनभक्त सेठ के महल में से वह रत्न ले आयेगा, उसे इनाम दिया जायेगा।

सूर्य नाम का एक चोर वह साहसपूर्ण कार्य करने को तैयार हो गया। उसने कहा—अरे, इन्द्र के मुकुट में लगा हुआ रत्न भी मैं क्षणभर में ला सकता हूँ, तो... इसमें कौनसी बड़ी बात है!

लेकिन, महल में घुसकर उस रत्न को चुराना कोई सरल बात न थी; वह चोर किसी भी प्रकार सफल न हुआ। अंत में वह एक त्यागी श्रावक का वेष धारण करके सेठ के गाँव में पहुँचा। अपने वाक्य-चातुर्य से, व्रत-उपवास आदि के दिखावे से वह लोगों में प्रसिद्ध होने लगा और उसे धर्मात्मा समझकर जिनभक्त सेठ ने अपने चैत्यालय की देखरेख का काम उसको सौंपा। फिर क्या था; त्यागीजी नील-मणि को देखते ही आनंद-विभोर हो गये... और विचार करने लगे कि कब मौका मिले और मैं इसे लेकर भाग जाऊँ।

इतने में सेठ को दूसरे गाँव जाने का मौका आया और वे उस बनावटी श्रावक को चैत्यालय की देखरेख की सूचनाएँ देकर चले गये। गाँव से कुछ दूर चलकर उन्होंने पड़ाव डाला।

रात हुई... सूर्यचोर उठा... उसने नीलमणि रत्न अपने जेब में रखा और भागा... लेकिन नीलमणि का प्रकाश छिपा न रहा; वह तो अंधकार में भी जगमगा रहा था! इससे चौकीदारों को संदेह हुआ और उसे पकड़ने के लिये उसके पीछे दौड़े। अरे... मंदिर के नीलमणि की चोरी करके चोर भाग रहा है... पकड़ो... पकड़ो... ऐसा चारों ओर कोलाहल मच गया।

जब सूर्यचोर को बचने का कोई उपाय नहीं रहा, तब वह जहाँ जिनभक्त सेठ का पड़ाव था, उसी में घुस गया। चौकीदार उसे पकड़ने को पीछे आये। सेठ सब बात समझ गये... कि यह भाई साहब चोर हैं, लेकिन त्यागी के रूप में प्रसिद्ध यह आदमी चोर है—ऐसा लोगों को पता चलेगा तो धर्म की निंदा होगी—ऐसा विचारकर बुद्धिमान सेठ ने चौकीदारों को डाँटते हुए कहा—अरे, तुम लोग क्या कर रहे हो? यह कोई चोर नहीं, यह तो 'सज्जन-धर्मात्मा' हैं। मैंने ही इन्हें नीलमणि लाने के लिये कहा था, तुम लोगों ने इन्हें चोर समझकर व्यर्थ हैरान किया।

सेठ की बात सुनकर चौकीदार शर्मिन्दा होकर वापिस चले गये। और इसप्रकार एक मूर्ख आदमी की भूल के कारण होनेवाली धर्म की निंदा रुक गई। इसे उपगूहन कहते हैं। जिसप्रकार एक मेढ़क खराब होने से कहीं सारा समुद्र खराब नहीं हो जाता, उसीप्रकार किसी मूर्ख-अज्ञानी मनुष्य द्वारा भूल हो जाने से कहीं पवित्र जैनधर्म मलिन नहीं हो जाता।

जैसे माता इच्छा करती है कि मेरा पुत्र उत्तम गुणवान हो, परंतु पुत्र में कोई छोटा-बड़ा दोष दिखाई दे तो वह उसे प्रसिद्ध नहीं करती; किंतु ऐसा उपाय करती है कि उसके गुणों की वृद्धि हो। उसीप्रकार धर्मात्मा भी धर्म का अपवाद हो, ऐसा नहीं करते, लेकिन जिससे धर्म की प्रभावना हो, वह करते हैं। किसी गुणवान धर्मात्मा में कदाचित् कोई दोष आ जाये तो उसे गौण करके उसके गुणों की मुख्यता रखते हैं और एकांत में बुलाकर, उन्हें प्रेम से समझाकर, जिसप्रकार उनके दोष दूर हों और धर्म की शोभा बढ़े, वैसा करते हैं।

लोगों के चले जाने के बाद जिनभक्त सेठ ने भी उस सूर्यचोर को एकांत में बुलाकर उलहाना दिया, और कहा—भाई! ऐसा पापकार्य तुझे शोभा नहीं देता। विचार तो कर कि यदि तू पकड़ा गया होता तो तुझे कितना दु:ख होता। अत: इस धंधे को तू छोड़।

वह चोर भी सेठ के उत्तम व्यवहार से प्रभावित हुआ और अपने अपराध की क्षमा माँगते हुए बोला कि हे सेठ! आपने ही मुझे बचाया है, आप जैनधर्म के सच्चे भक्त हो; लोगों के सामने आपने मुझे सज्जन-धर्मात्मा कहा है, तो अब मैं भी चोरी छोड़कर सचमुच सज्जन धर्मात्मा बनने का प्रयत्न करूँगा। जैनधर्म महान है, और आप जैसे सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा वह शोभायमान है।

इसप्रकार सेठ के उपगूहन गुण के द्वारा धर्म की प्रभावना हुई।

बंधुओ! यह कथा हमें ऐसी शिक्षा देती है कि साधर्मी के किसी दोष को मुख्य करके धर्म की निंदा हो, वैसा नहीं करना, परंतु प्रेमपूर्वक समझाकर उसे दोषों से छुड़ाना चाहिये; और धर्मात्मा के गुणों को मुख्य करके उसकी प्रशंसा द्वारा धर्म की वृद्धि हो, वैसा करना चाहिये।

आनंद का अनुभव

स्वानुभूति का आनंद ही जगत में सर्वोत्कृष्ट उपादेय है। अत्यंत मधुर जो चैतन्यरस का स्वाद, इस स्वाद जैसा आनंद जगत के अन्य पदार्थ में नहीं, ऐसा आनंद बतलाकर संत कहते हैं कि आज ही तुम इसका अनुभव करो, ऐसे आनंद का अभी अनुभव करो!

सम्यग्दृष्टि जीव की दशा की अद्भुत महिमा
आठ मद के अभाव का वर्णन

[अंक 320 से आगे]

सम्यग्दृष्टि जीव की परिणति अचिंत्य है; उसे आठ गुणों का पालन होता है। उन आठ अंग संबंधी कथाएँ आप आत्मधर्म में पढ़ रहे हैं। अब आठ अंगों का भाववाही वर्णन पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों में से यहाँ दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त सम्यग्दृष्टि को पच्चीस दोष नहीं होते; उनमें से आठ मद—कुलमद, जातिमद, रूपमद, विद्यामद, धन अथवा ऋद्धिमन, बलमद, तपमद और ऐश्वर्यमद धर्मी को होते नहीं। उनका भावभीना वर्णन यहाँ दिया जा रहा है। यह वर्णन छहढाला की तीसरी ढाल के प्रवचनों से लिया गया है।

गतांक में ज्ञानमद (विद्यामद) तक के चार मद का वर्णन आप पढ़ चुके हैं। शेष चार मद का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

धनमद अथवा ऋद्धि का मदः—अंतर में अपना चैतन्यवैभव जिसने देखा है, ऐसे धर्मात्मा बाह्यवैभव को अपना नहीं मानते, तो फिर उसका मद कैसा? समुद्र जैसा पूर्णानंद अपने में तरंगित है, ऐसी जहाँ प्रतीति हुई, वहाँ अन्य सर्वत्र से मद उड़ जाता है। माता-पिता-धन-शरीर-पुत्र-राजपद-प्रधानपद, यह तो सब कर्मकृत हैं, इनका अभिमान क्या? जिसने राग और पुण्य से अपने चैतन्यमूर्ति आत्मा का भिन्न अनुभव किया है, उसे राग या पुण्यफल का अभिमान क्या? यह तो सब कर्मसामग्री है, उसमें कहीं मेरा धर्म नहीं है। जिन्हें धर्म की प्रतीति हुई है, उन्हें कर्म-सामग्री में अपना क्यों रहेगा? कर्म-सामग्री द्वारा (पुण्य के फल द्वारा) जिसे अपनी महत्ता प्रतीत होती है, उसे कर्म से भिन्न अपना चैतन्यवैभव दृष्टिगोचर नहीं हुआ। धर्मी जानता है कि यह वैभव मेरा नहीं है, यह तो उपाधि है। मेरे आत्मा का वैभव तो केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय से भरपूर अक्षय-अखंड-अविनाशी है। माता-पिता महान हों या बाह्य में अटूट पुण्य-वैभव हो, उसमें मुझे क्या? वह तो सब कर्म की सामग्री है; वह मेरी जाति नहीं है; हम

तो सिद्ध भगवंतों की जाति के तथा तीर्थंकरों के वंशज हैं; उनके मार्ग पर चलनेवाले हैं। सिद्ध और तीर्थंकर भगवंतों जैसे ही आत्मवैभव के हम स्वामी हैं। हमारा आत्मा चैतन्यदेव है, वही हमारी महानता है। यह चैतन्यदेव स्वयं महिमावंत तथा जगत में सर्वश्रेष्ठ हैं, इसके अतिरिक्त जगत में अन्य किसी पदार्थ द्वारा हमें अपनी महानता भासित नहीं होती। चैतन्य का ऐश्वर्य जिसने नहीं देखा, वह किसी न किसी पर के बहाने मिठास लेता है। जैसे निबौरी को एकत्र करके ऐसा माने कि मेरे पास कितना वैभव है! वह तो बालक है, राजा ऐसा नहीं करता; उसीप्रकार बाह्य में पुण्य-वैभव तो निबौरी जैसे कड़वे विकार के फल हैं, बालबुद्धि अज्ञानी उसे अपना वैभव मानता है, परंतु राजा जैसा सम्यग्दृष्टि जिसने अपने सच्चे चैतन्यनिधान को अपने में देखा है—वह कभी पुण्यफल के द्वारा अपनी महानता नहीं समझता; उसे तो वह धूल के ढ़ेर समान पुद्गलपिंड मानता है।

भरत चक्रवर्ती को छह खंड का राज्य-वैभव था, तथापि वे जानते थे कि हमारे चैतन्य के अखंड वैभव के अतिरिक्त एक रजकण भी हमारा नहीं है। हम उसके स्वामी नहीं हैं। हम छह खंड के स्वामी नहीं है, परन्तु अखंड़ आत्मा की अनुभूति के स्वामी हैं। इसप्रकार वे चैतन्य की अनुभूति में बाह्यवैभव का स्पर्श भी नहीं होने देते थे। अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा आत्मसंपदा के अचिंत्य वैभव का स्वसंवेदन जिसने किया, उसे जड़ या विकार के फल का अभिमान कहाँ से रहे? इसप्रकार धर्मी को धनमद नहीं होता; उसीप्रकार कोई अन्य धर्मात्मा-गुणवान जीव अशुभकर्म के वश दरिद्र हो, तो उसके प्रति उसको अवज्ञा या तिरस्कार बुद्धि नहीं होती। अरे, आत्मा के चैतन्यनिधान के निकट जगत के वैभव को तुच्छ-सड़े हुए तृण समान समझकर, उसे क्षणभर में छोड़कर, चैतन्य के केवलज्ञान-निधान को साधने के लिये अनेक मुमुक्षु जीव मुनि होकर वन में चले गये। अज्ञानी जीव उस धनादि जड़सामग्री के समक्ष अपने सुख की भीख माँगते हैं। ज्ञानी तो उसका त्याग करके अपने चैतन्यसुख की साधना करते हैं। अज्ञानी को पुण्यकर्म के उदय से धनादि सामग्री मिले, वहाँ तो उसे अभिमान हो जाता है कि मैं कितना बड़ा हो गया हूँ! अरे, भाई! अपने इस अभिमान को छोड़ दे और अपने चैतन्यनिधान को देख। आत्मा की चैतन्य-संपदा के सन्मुख तेरी इस जड़ विभूति का क्या मूल्य है?

देखो तो सही, संतों ने आत्मा के वैभव का कैसा वर्णन किया है! ऐसा वैभव अंतर में है, वह बताया है। ऐसे वैभववाले अपने आत्मा को जहाँ अनुभव में लिया, वहाँ धर्मी को बाह्यधन

आदि वैभव का मद नहीं रहता।

(6) बलमदः—यह शरीर ही मैं नहीं हूँ, तो उसके बल का अभिमान कैसा? मेरा आत्मा अनंत चैतन्यबल का धारक है; उसकी प्रतीति तो हुई है; उसकी आराधना में ध्यान द्वारा ऐसा एकाग्र होऊँ कि चाहे जैसे उपसर्ग-परिषह आने पर भी चलायमान न होऊँ—ऐसी वीतरागी क्षमा दशा प्रगट करूँ, वही आत्मा का सच्चा बल है। शारीरिक बल कहीं आत्मा को साधने में काम नहीं आता।

यद्यपि तीर्थंकरों को शारीरिक बल भी दूसरों की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है, परंतु अंतर में चैतन्यशक्ति की प्रतीति में वे अपने को देह से भिन्न जानते हैं। भरत और बाहुबली दोनों भाई आपस में लड़े, तथापि किसी को अपने शरीर का मद नहीं था। दोनों के अंतर में भेदज्ञान का कार्य चल रहा था। युद्ध कि क्रिया हुई, इसलिये देह के साथ एकत्वबुद्धि होगी—ऐसा रंचमात्र भी नहीं है। सहज अभिमान आया, लेकिन अंतर की चैतन्यपरिणति उस अभिमान से भिन्न ही कार्य कर रही थी; उसे ज्ञानी ही पहिचानते हैं।

भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे; उनके बल में जब अमुक सैनिकों ने शंका की, तब बल-प्रदर्शन का विकल्प उठते ही भरत राजा ने अपनी अंगुली टेढ़ी कर दी, और सैनिकों से कहा कि मेरी यह अंगुली टेढ़ी हो गयी है, इसे सीधी कर दो। सैनिकों ने बहुत जोर लगाया, परंतु अंगुली को सीधा न कर सके। अंत में एक साँकल अंगुली से साथ बाँधकर 96करोड़ पैदल सेना ने उसे खींचा। चक्रवर्ती ने तर्जनी अंगुली का जरा सा झटका लगाया कि सारे सैनिक पृथ्वी पर गिर पड़े—ऐसा तो उनका शारीरिक बल था! और इसप्रकार का विकल्प भी आया, लेकिन शरीर और विकल्प दोनों से भिन्न ऐसी अनंत चैतन्यशक्ति से संपन्न ही वह अपने को देखते हैं। ऐसी चैतन्यदृष्टि में उन्हें शरीर का मद रंचमात्र नहीं है।

ऐसा ही एक प्रसंग नेमिनाथ तीर्थंकर और श्रीकृष्ण के बीच बना था। यादवों की सभा में एकबार शरीर-बल की चर्चा चल उठी। नेमकुमार और श्रीकृष्ण दोनों चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण बड़े और नेमकुमार छोटे थे; परंतु छोटा फिर भी सिंह! छोटे परंतु तीर्थंकर थे! वे भी सभा में गंभीर रूप से बैठे थे। सभा में किसी ने श्रीकृष्ण के बल की प्रशंसा की, किसी ने नेमकुमार के बल की। किसका बल अधिक है, उसकी परीक्षा करने का निर्णय हुआ।

उसीसमय नेमकुमार ने तर्जनी अंगुली बढ़ाकर कहा कि यदि आपमें बल हो तो इसे मोड़ दो! श्रीकृष्ण तो उस अंकुली पर तुल गये, तथापि उसे मोड़ न सके।—कैसा अंचित्य शरीर-बल! तथापि उस समय आत्मा को उससे सर्वथा भिन्न ही जानते थे। सम्यक्त्व में आठों मद का अभाव था। अस्थिरता का विकल्प आया, परंतु उसमें सम्यक्त्व संबंधी कोई दोष न था। ऐसे सम्यक्त्व को पहिचानकर उसकी आराधना करने का उपदेश है।

धर्मात्मा को प्राकृतिक रूप से पुण्य का वैभव होता है, लेकिन वह जानता है कि इस पुण्य के वैभव में हम नहीं है। हमारे चैतन्य का वैभव इससे निराला है। हमारा सामर्थ्य हमारे अंतर में समाया है। हमारे चैतन्य का बल कहीं शरीर में नहीं है। ऐसी प्रतीति में धर्मी को बल का मद नहीं होता। शरीर से जो धर्म होना मानते हैं, उन्हें मद हुए बिना नहीं रहता।

(7) तपमदः—स्वयं कोई उपवास, स्वाध्यायादि तप करता हो और अन्य धर्मात्मा को उपवासादि की विशेषता न हो, वहाँ धर्मी जीव अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा मानकर तपमद नहीं करता। अहा, सच्चे तपस्वी तो वे शुद्धोपयोगी मुनि भगवंत हैं कि जो चैतन्य के उग्र प्रतपन द्वारा वीतरागभाव प्रगट करके कर्मों को भस्म कर देते हैं, मैं तो अभी प्रमाद में ही पड़ा हूँ। शरीर की निर्बलता से कोई उपवासादि तप न कर सकता हो लेकिन ज्ञान-ध्यान की उग्रता द्वारा आत्मा की शुद्धता की वृद्धि करता हो, वह धन्य है! इसप्रकार सम्यग्दृष्टि को तप का मद नहीं होता। मद, वह तो कषाय है और तप, वह कषाय नष्ट करने के लिये है।

(8) ऐश्वर्यमदः—अर्थात् पूज्यपने का मद अथवा अधिकार का मद; वह धर्मात्मा को होता नहीं। हम तो सर्वज्ञ के पुत्र हैं। हमारा पद तो सर्वज्ञपद है, अन्य कोई हमारा पद नहीं। केवलज्ञान द्वारा ही हमारी महत्ता है, इसके अतिरिक्त बाह्य में राज्यपद या प्रधानपद द्वारा हमारे आत्मा की महत्ता नहीं—ऐसा जाननेवाले धर्मी को बाह्य महत्ता का मद नहीं होता। पुण्य के योग से बाह्य महत्ता अधिक हो, परंतु उसके कारण अपने आत्मा की महत्ता धर्मी नहीं मानते।

श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है कि—'लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो?' यह तो सब संसार का ठाठबाट है; इसमें कहीं आत्मा की शोभा नहीं है। मेरा आत्मा स्वयं सिद्ध परमेश्वर है—उसके समक्ष ऐसी कौन सा ऐश्वर्य या महत्ता है कि जिसका मैं मद करूँ? अरे, राग और राग का फल वह तो सब अपद हैं-अपद हैं। लोग बाह्य पदवी के लिये लालायित

रहते हैं; लेकिन धर्मी जानता है कि मेरे चैतन्य के-पद के सन्मुख चक्रवर्तीपद भी तुच्छ प्रतीत होता है। ऐसा चैतन्यपद जिसने प्राप्त किया है (जाना है और अनुभव किया है) वह अन्य किस पद का अभिमान करे? अहा, तीन लोक में सबसे उच्च ऐसा मेरा चैतन्यपद मैंने अपने अंतर में देखा है। अंतर में आनंद की अपूर्व वीणा बजी है। अतीन्द्रिय सुख की तरंगों से चैतन्य-समुद्र उमड़ पड़ा है।—ऐसा आनंदस्वरूप मैं स्वयं हूँ.... आनंद से उच्च जगत में दूसरा क्या है? ऐसी आत्म-अनुभूति के द्वारा धर्मात्मा को जगत के ऐश्वर्य का मोह नष्ट हो गया है, इसलिये उसे कहीं ऐश्वर्य का मद नहीं होता। उच्च अधिकार हों, लाखों-करोड़ों लोगों में पुजता हो, संपूर्ण देश में आज्ञा चलती हो—लेकिन उसके द्वारा धर्मी अपने आत्मा की रंचमात्र भी महानता नहीं मानता। मेरी महानता तो मेरे स्वभाव में ही है, दूसरे मुझे क्या महत्ता देंगे? दूसरों के पास महानता लेने जाना पड़े, ऐसा पराधीन मैं नहीं हूँ। इसप्रकार धर्मी को बड़प्पन का मद नहीं होता; उसीप्रकार अन्य जीव अशुभकर्म के उदय से दरिद्र हो, उसकी अवज्ञा भी नहीं करता। बाह्य ऐश्वर्य हो या न हो, वह तो कर्मकृत (कर्मों का फल) है। उसका स्वामित्व धर्मी को नहीं है। मिथ्यादृष्टि बड़ा राजा हो और सम्यग्दृष्टि उसकी नौकरी करता हो—यह तो सब शुभाशुभ कर्म का खेल है, इनसे धर्मी अपने को दीन नहीं मानता। अपने अक्षय ज्ञानादि अनंत ऐश्वर्य को वह अपने में देखता है—इसप्रकार धर्मी को मद या दीनता का अभाव है।

धर्मात्मा को सम्यक्त्वपूर्वक ऐसे आठ मद का अभाव हुआ है। स्वद्रव्य और परद्रव्य की अत्यंत भिन्नता को जिसने जान लिया है, उसको परवस्तु द्वारा अपना बड़प्पन भासित नहीं होता। माता-पिता-शरीर-रूप-धन आदि जो वस्तुएँ मेरी हैं ही नहीं, उनके द्वारा मेरी महत्ता कैसी? मेरी महत्ता तो मेरे सम्यक्त्वादि स्वभाव द्वारा ही है। सुंदर शरीर और बाह्य बड़प्पन, वह तो कई बार मिला, उसमें जिसे अपनी शोभा प्रतीत होती है, उसे चैतन्य से शोभायमान ऐसे अपने आत्मा की प्रतीति नहीं है। देह-जाति-रूप-माता-पिता-धन-वैभव-उच्च पदवी यह सब परद्रव्य हैं, इन सबसे अपने आत्मा को सर्वथा भिन्न अनुभव करने के बाद धर्मी को उन पदार्थों के द्वारा अपना बड़प्पन कैसे भासित हो? इसलिये उसके आठ मद नहीं होते। कोई विकल्प आ भी जाये, तो उसे मलिन जानकर वह भाव छोड़े और दोषरहित शुद्ध सम्यक्त्व की आराधना करे—ऐसा उपदेश है।

इसप्रकार आठ शंकादि दोष तथा आठ मद सम्यग्दृष्टि को नहीं होते; इसके अतिरिक्त

छह अनायतन और तीन मूढ़ता का सेवन भी उसे नहीं होता। अरिहन्त परमात्मा ने जीव का जैसा स्वरूप बतलाया है तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागमार्ग बतलाया है, उससे विपरीत कहनेवाले ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को धर्मी जीव सब प्रकार से छोड़ता है। किसी भी प्रकार उसकी अनुमोदना नहीं करता तथा कुदेव-कुगुरु-कुधर्म की सेवा करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवों का साथ भी छोड़ देता है। धर्मबुद्धि से ऐसे जीव का साथ वह नहीं कर सकता, तथा देव संबंधी अनेक मूढ़ताएँ, गुरु संबंधी अनेक मूढ़ताएँ, तथा धर्म संबंधी अनेक मूढ़ताएँ लोगों में प्रचलित हैं, परंतु धर्मी स्वप्न में भी उनका सेवन नहीं करता।

जो धर्म का स्थान नहीं, जिसके पास धर्म का सच्चा उपदेश नहीं, सम्यग्ज्ञान का स्वरूप जिनमें नहीं, अनेक प्रकार से जो विषय-कषाय राग-द्वेष के पोषक हैं, जिनमें हिंसा-अहिंसा का भी विवेक नहीं, ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुधर्म वह धर्म के अनायतन हैं, उनके सेवन से आत्मा का किंचित्मात्र हित नहीं होता, उनके सेवन से तो सम्यक्त्वादि का घात होता है, और आत्मा का अत्यंत अहित होता है। कुदेवादि का सेवन सम्यग्दृष्टि को तो होता ही नहीं, लेकिन जैन नाम धारण करनेवाले जिज्ञासु को भी ऐसे कुदेवादि का सेवन नहीं होता। वीतरागमार्ग के देव-गुरु-धर्म और उनका सेवन करनेवाले साधर्मी-धर्मात्मा के अतिरिक्त दूसरे का सेवन अहित का कारण जानकर अत्यंत छोड़ने योग्य है।

सम्यग्दृष्टि, महान अलौकिक आत्मा के अंतरस्वभाव की जिसे प्रतीति हुई है, उसे निश्चय से सम्यक्त्व के साथ व्यवहार भी पच्चीस दोषरहित होता है। आजीविका छूट जाये, धन लुट जाये, देश को छोड़ना पड़े या प्राण जायें, तथापि सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी प्रकार के भय से-आशा से-स्नेह से कुधर्म की या कुदेवादि की आराधना नहीं करता। वीतरागी देव-गुरु-धर्म का भक्त हिंसक देव-देवियों को नमन नहीं करता। अहा, अरिहंतदेव का उपासक तो चैतन्य के वीतरागमार्ग पर चलनेवाला है, वह अन्य कुमार्ग का आदर क्यों करेगा? वह कुमार्ग की या उसके सेवक की प्रशंसा नहीं करता, अनुमोदना नहीं करता। कुधर्म खूब फैला हुआ हो, अतः अच्छा है, उसके भक्त अच्छे हैं, उसके शास्त्र-मंदिर अच्छे हैं—ऐसी प्रशंसा धर्मी नहीं करता। कुधर्म के सेवक कोई बड़ा मंदिर बनवायें, लाखों रुपया खर्च करके विशाल यज्ञादिक उत्सव करें, वहाँ धर्मी उनकी प्रशंसा भी नहीं करता कि तुमने बहुत अच्छा कार्य किया है। अरे वीतरागमार्ग से विरुद्ध ऐसा कुमार्ग, जो जगत के जीवों का अहित करनेवाला हो, उसकी प्रशंसा

क्या ? जिसमें मिथ्यात्व का पोषण हो, उन क्रियाओं को अच्छा कौन कहे ? इसप्रकार कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का तो स्वयं सेवन नहीं करता तथा दूसरे जो सेवन करें, उनकी प्रशंसा भी नहीं करता, परंतु संभव हो तो उपदेश देकर कुमार्ग से छुड़ाता है। धर्मी गृहस्थ राजा को या माता-पिता आदि बड़ों को नमन करे, वह तो लोक-व्यवहार है, उसके साथ कहीं धर्म का संबंध नहीं है, लेकिन धर्म के व्यवहार में वह कुदेव-कुगुरु को कभी नमन नहीं करता। यह बात तो उनके लिये हैं, जिन्हें सम्यग्दर्शनरूपी महारत्न लेना है, धर्म का सच्चा माल लेना है; तथा जिन्होंने सम्यग्दर्शनरूपी रत्न प्राप्त कर लिया है, उन्हें उसको संभालने की बात है। सम्यक्त्व में किंचित् भी अतिचार न लगे और शुद्धता हो—इसलिये पच्चीस दोषरहित और आठ गुणसहित सम्यक्त्व की आराधना करनी चाहिये। उसके द्वारा ही जीव का परम हित होता है।

भाई! यह तो अपने हित के लिये सच्चे-झूठे का विवेक करने की बात है। सच क्या और झूठ क्या, इसी की जिसे खबर नहीं, वह क्या लेगा ? और क्या छोड़ेगा ? अपना हित किसप्रकार करेगा ? परीक्षा द्वारा सच्चे-झूठे को पहिचानकर निर्भयरूप से सत्य का स्वीकार करना चाहिये और असत्य का सेवन छोड़ना चाहिये। जगत के साथ मेल रखने या जगत को अच्छा दिखाने के लिये कहीं धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये। यह तो अपनी श्रद्धा सच्ची करने की बात है।

वीतरागी देव-गुरु-धर्म का आदर और उससे विपरीत कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्याग, इतना तो सम्यक्त्व की पात्रतारूप प्रथम भूमिका में होना चाहिये। 'त्याग-विराग न चित्त में थाय न तेने ज्ञान'—ऐसा श्रीमद् राजचंद्र ने कहा, उसमें कुदेवादि का त्याग तो पहले ही समझ लेना चाहिये। दूसरे तो अनेक प्रकार के त्याग किये, परंतु कुदेव-कुगुरु के सेवन का त्याग न करे तो उसका रंचमात्र भी हित नहीं होता। और जहाँ राग को धर्म माना, वहाँ वैराग्य कहाँ रहा ? अरे, देह से भिन्न मेरा अखंड चैतन्यतत्त्व क्या है और उसका अनुभव कैसा है ? उसका सच्चा स्वरूप बतलानेवाले वीतराग सर्वज्ञदेव, रत्नत्रयवंत गुरु और रागरहित धर्म तथा शास्त्र को जो पहिचाने, वह जीव उससे विरुद्ध अन्य किसी को मानता नहीं, नमन नहीं करता और प्रशंसा नहीं करता।

एक ओर कुन्दकुन्दाचार्य जैसे वीतरागी संतों का भक्त कहलाये तथा दूसरी ओर उनसे विरुद्ध कहनेवालों का आदर तथा श्रद्धा करे, तो उसे सत्य का विवेक कहाँ रहा ? भाई! वीतरागमार्ग के और वीतरागी संतों के विरोधी ऐसे कुगुरु के सेवन में तो मिथ्यात्व की पुष्टि तथा तीव्र कषाय के द्वारा आत्मा का बहुत अहित होता है, जिससे उसका निषेध करते हैं। इसमें

कहीं किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं है, परंतु जीवों की हितबुद्धि ही है। अपनी श्रद्धा स्वच्छ रहे, उसमें दोष न लगे उसकी बात है। सत्यमार्ग से विरुद्ध विकल्प धर्मी कभी आने नहीं देता। मिथ्यात्व-संबंधी दोषों से बचने और सम्यक्त्व की शुद्धि बनाये रखने के लिये नि:शंकतादि आठ अंग आदरणीय हैं।

—इसप्रकार सम्यक्त्व-संबंधी गुण-दोष को पहिचानकर अपने हित के लिये नि:शंकितादि आठ गुणसहित, शंकादिक पच्चीस दोषरहित शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करो—ऐसा उपदेश है।

शुद्धोपयोग ही धर्म है

आत्मा का शुद्धभाव ही वास्तव में धर्म है; इसके सिवा जीव संसार की चार गतियों में घूम रहा है। बिना शुद्धभाव के जीव को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, केवलज्ञान या मोक्ष कुछ भी नहीं होता। शुभराग द्वारा किसी को केवलज्ञान या सम्यग्दर्शनादि नहीं होता। आत्मा की निर्मल पर्यायरूप जितने धर्म हैं, वे सभी शुद्धोपयोग में समा जाते हैं। अत: शुद्धोपयोग ही धर्म का सर्वस्व है, और वही धर्मी का मनोरथ है, वही प्रशंसनीय है। इस शुद्धोपयोग से ऊँची जगत में कोई दूसरी चीज़ नहीं है। शुभोपयोग सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं, मुनिदशा नहीं, मोक्षमार्ग नहीं; शुभोपयोग से न तो केवलज्ञान होता है और न निर्वाण। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, मोक्षमार्ग, केवलज्ञान तथा सिद्धपद—ये सभी शुद्धोपयोग में समाविष्ट हैं। इसलिये आत्मा का जैसा शुद्धस्वभाव है, वैसा जानकर उसमें एकाग्रतारूप जो शुद्धोपयोग, वही मोक्षार्थी का कर्तव्य है, मोक्षार्थी को वही आदरणीय है।

परम आनंदमय सहज तत्त्व को साधने की रीति

अहा, मुमुक्षु जीव जगत से कितना उदास होता है ! और स्वकार्य को साधने हेतु अंतर में एकाकी कैसा लीन होता है, वह यहाँ इतने सरलभाव से बतलाया है कि आत्मा को भी वैसी साधना की धुन चढ़ती है; कहीं थोड़ी-बहुत ढील हो तो उसे हटाकर आत्मा को साधने की शूरवीरता जागृत होती है। जगत के लोकमत को देखकर बैठे रहनेवाले जीव आत्मा में नहीं उतर सकते; आत्मा की गहराई में उतरनेवाले जीव को जगत की ओर देखने का अवकाश नहीं होता। वाह ! कैसा सुंदर निरपेक्ष मार्ग है !

[श्री नियमसार, गाथा 115 से 118पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से]

अंतर में अकेले अपने गंभीर चैतन्यतत्त्व की साधना ही मुमुक्षु जीव का कर्तव्य है, परंतु लोक के साथ वाद-विवाद कर्तव्य नहीं है। स्वयं अपना कार्य कर लेने जैसा है। दूसरों को समझाने या जैनधर्म की प्रभावना के लिये भी संकल्प-विकल्प करने में अटकना, वह कहीं मुमुक्षु का कर्तव्य नहीं है; मुमुक्षु का कर्तव्य तो विकल्पों से पार होकर बाह्य संगरहित अकेले चैतन्य को अंतर में साधना वह है; ऐसी साधना वही मोक्ष के लिये कर्तव्य है। ऐसी साधना करते-करते बीच में राग की भूमिका में व्यवहार-प्रभावना आदि सहज ही हो जाते हैं, परंतु साधक को उस राग में कर्तृत्वबुद्धि नहीं है; राग की उमंग नहीं है; उसे तो मोक्ष का कारणभूत शुद्धरत्नत्रयस्वरूप स्वकार्य को साधने की ही रुचि है, उसी में तत्परता है। धर्मी जीव अपने सहज तत्त्व की आराधना किसप्रकार करता है, उसकी यह बात चलती है:—

निधि पा, मनुज तत्फल वतन में गुप्त रह ज्यों भोगता,
त्यों छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञाननिधि को भोगता॥

जिसप्रकार कोई मनुष्य पहले दरिद्र हो और परदेश जाकर वहाँ भाग्योदय से निधि प्राप्त करके पश्चात् परदेश छोड़कर अपने वतन में रहकर अकेला गुप्तरूप से उस निधि का उपभोग करता है; उसीप्रकार सहज ज्ञानस्वरूप जीव अपने स्वरूप को भूलकर अनादिकाल से संसार

में भटकता दु:खी हुआ; वह जीव कभी सहज वैराग्यवन्त होकर श्रीगुरु की परमभक्ति द्वारा, उन्होंने जैसा परमस्वभाव कहा, वैसा लक्षगत करके, अपना सहज ज्ञाननिधि को प्राप्त किया, उसके सम्यक्त्वादि गुण की पवित्रता का उदय हुआ और अंतर में निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान-शांति में अपना परम आनंदमय ज्ञाननिधान अपने में ही प्राप्त किया... अहा! मैं तो ऐसे परमशांत चैतन्य निधान का स्वामी हूँ... ऐसी प्रतीति हुई। अपनी निधि को गुरु के प्रताप से अपने में देखा।—इसप्रकार सहज परमतत्त्वज्ञानी हुआ यह जीव अपनी सहज ज्ञाननिधि को अपने स्वरूप में गुप्तरूप से अकेला-अकेला भोगता है। गंभीर चैतन्यनिधान के उपभोग में मग्न वह जीव अज्ञानी-लौकिकजनों के संग को ध्यान में विघ्न का कारण मानकर छोड़ता है।

अहा, मेरे आत्मा के परमगुण निर्मलरूप से उदित हुए, अनंत गुणों के निधान निर्मलपर्यायरूप से खिल उठे; ऐसे निधान मुझमें भरे हैं, फिर जगत के समक्ष क्या देखना? ज्ञानी के अंतर में चैतन्य के निधान भरे हैं, उनकी जगत को कहाँ खबर है? जगत को अपने निधान की भी खबर नहीं है और ज्ञानी के निधान को भी वह नहीं जानता। अरे, जिन्हें अपने स्वरूप की खबर नहीं है, ऐसे अज्ञानी जीवों के संग का मुझे क्या काम? मैंने तो जगत से विरक्त सहज वैराग्य सम्पत्तिवान होकर अपनी परिणति को अंतर्मुख करके अपनी सहज ज्ञाननिधि को प्राप्त कर लिया है। श्रीगुरु ने भी यही बतलाया है कि विकल्प से पार होकर अंतर में अपने ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता करो।—इसप्रकार ज्ञानस्वभावोन्मुख होना, वही ज्ञानी धर्मात्मा की सच्ची सेवा है। ऐसे ज्ञान की श्रद्धा बिना ज्ञानी की ज्ञानचेतना को नहीं पहिचाना जा सकता अर्थात् ज्ञानी की सच्ची सेवा नहीं हो सकती। ज्ञानी के ज्ञान की पहिचान बिना, मात्र शरीर की सेवा करे, उसमें तो शुभभाव होगा, परंतु उससे ज्ञान निधान प्रगट नहीं होता। ज्ञाननिधान तो तभी प्रगट होता है, जब ज्ञानी द्वारा बतलाये गये अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करे।

राग के रस से पृथक् मात्र ज्ञानरस का पिण्ड, सो आत्मा है; उसकी सन्मुखता करने से प्रतीति हुई कि—अहो! ऐसे अनंतगुण के निधान से पूर्ण, आनंद से पूर्ण, शांति से पूर्ण—ऐसा मैं हूँ। ऐसे चैतन्य की प्रतीति होने पर उसी का रस रहता है और परसंग का रस छूट जाता है; राग का रस उड़ जाता है, मात्र चैतन्यरस के निधान का ही परम प्रीतिपूर्वक निजगृह में बैठा-बैठा गुप्तरूप से उपभोग करता है। अहा, उसके अंतर्वेदन का क्या कहना! लोग उसे कहाँ से देख सकेंगे? ज्ञानी के गुप्त चैतन्यनिधान को जगत देख नहीं सकता... परंतु जगत को बतलाने का काम भी क्या है? जगत न देखे, उससे क्या? मैं तो अपने निधान का अपने में प्रगटरूप अनुभव

कर ही रहा हूँ।—इसप्रकार धर्मी नि:शंकरूप से अपने गुप्त निधान का अपने में उपभोग करता है, उसकी रक्षा करता है। चैतन्य के अपार निधान के समक्ष जगत की विभूति को वह तृणवत् देखता है।—इसप्रकार मुमुक्षु को जगत से असंग होकर अपने आनंदनिधान को ही साधना योग्य है, दूसरों के लिये रुकना उचित नहीं; दूसरों के संग से तो चित्त चंचल होगा, आकुलता होगी, जिससे ध्यान में विघ्न आयेगा। इसलिये चैतन्य के आनंदमय ध्यान की सिद्धि हेतु मुमुक्षु जीव परसंग छोड़ता है और गुप्तरूप से अकेले अपने ज्ञान की रक्षा करके स्वकार्य को साधता है; विपरीत जनों के संग से दूर, अपने में लीन होकर गंभीर तत्त्वज्ञान में रहता है, जिसमें किसी विकल्प का भी संग नहीं है।

अहा, जिसमें सर्वज्ञशक्ति, अतीन्द्रिय आनंद, निर्विकल्प शांति—ऐसे अनंत चैतन्यनिधान स्पष्ट दिखायी देते हैं, ऐसे अपने गुप्त चैतन्य-निधान को पाकर हे ज्ञानी! उसका तू अपने में ही उपभोग करना... अपने अमूल्य ज्ञाननिधान की रक्षा करना। परमतत्त्व की जो अपूर्व श्रद्धा-ज्ञान-शांति प्रगट हुए हैं, उनकी रक्षा करना अर्थात् किसी भी प्रसंग पर उनमें विपरीतता नहीं आने देना। जगत तेरी बात न माने, मिथ्या कहे, विरोध करे, निन्दा करे अथवा रोगादि कोई भी प्रतिकूलता आये, तथापि अपनी श्रद्धा-ज्ञान-शांति को छोड़ना नहीं; अमूल्य निधान की भाँति उनकी रक्षा करना। अपनी श्रद्धा-ज्ञान की रक्षा के लिये, हे मुमुक्षु! तू संसार के अनेक प्रकार के रागी-द्वेषी-अज्ञानी जीवों के संग से दूर रहना; जगत के संग से अपनी आत्मशांति में भंग नहीं पड़ने देना; जगत से विरक्तरूप अपने स्वकार्य को साधने में तत्पर रहना। मैं अपने चैतन्यनिधान के सन्मुख परिणमित हुआ हूँ, मेरी पर्याय में वह निधान प्रगट हुआ है, फिर जगत के कोलाहल से मुझे क्या काम? बाह्य में दूसरों के संग का मुझे क्या प्रयोजन? मैं तो अपने आत्मा की भावना में उतरकर अपने स्वकार्य को साध रहा हूँ। किसी निर्धन को सोने की खान मिले, इसीप्रकार मुझे अपने परम चैतन्यरत्न की खान मिल गई है... अपने सम्यक्त्वादि अनंत गुणों की संपत्ति मिल गई है, उसके निकट जगत का क्या मूल्य?—इसप्रकार चैतन्यसंपदा के निकट ज्ञानी जगत को तृणवत् समझकर, आत्म-आराधनारूप स्वकार्य को साधते हैं। हे मुमुक्षु! तुझे भी यही कार्य अवश्य करने योग्य है।

आत्मसाधना के महा आनंद में जगत की ओर क्या देखना?

अहा, अपने परम आनंद को मैं साध रहा हूँ; आत्मा के इस आनंद में जगत की ओर आकर्षण ही नहीं रहता। जीव चैतन्य की एकाग्रता से बाहर निकले, तब परसंग होता है और

चित्त में राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, वह तो जन्म-मरण के रोग का ही कारण है। परसंग अर्थात् पर की ओर का उपयोग, उसमें चित्त चंचल होता है। इसलिये हे मुमुक्षु! बाह्य में परवस्तु होने पर भी उससे परम विरक्त होकर अपने चित्त को शांति से भरपूर चैतन्यतत्त्व में लगा और अपने स्वकार्य को साध। बुद्धि द्वारा अर्थात् भेदज्ञान द्वारा जिसने पर से भिन्न आत्मा का अनुभव किया है—ऐसा ज्ञानी महा आनंदमय चैतन्यतत्त्व में परिणाम को लगाता है और आत्मा के अतिरिक्त सारी दुनिया से अत्यंत उदासीन रहता है। आत्मसाधना के महा आनंद में जगत की ओर क्या देखना!

अहा, आत्मा के परम आनंदरस का जहाँ स्वाद लिया वहाँ जगत के राग का रस क्यों रहेगा? परोन्मुख वृत्ति में तो क्लेश है, उसमें आनंद का लेश भी नहीं है। अपना स्वतत्त्व लक्ष में लेने से अनाकुल शांतरस का वेदन होता है; उसके समक्ष जगत का रस नीरस लगता है। चैतन्यरस का स्वाद लिया, वहाँ कषाय का रस कैसे अच्छा लगेगा? अरे, चैतन्यतत्त्व के आनंद में शुभविकल्प का बोझा भी सहन नहीं होता। आँख में किरकिरी कदाचित् रह जाये, परंतु चैतन्य के शांतरस में कषाय का कण नहीं रह सकता; शुभराग का कण नहीं रह सकता। ऐसे चैतन्य रस के धाम अपने चैतन्यनिधान को हे मुमुक्षु! तू एकाकी रहकर साधना, उसमें जगत के अन्य किसी की अपेक्षा मत रखना। जगत के पंथ से चैतन्य का पंथ निराला है। चैतन्य-सुख का मार्ग अपने ही अंतर में समाया है, अपनी परिणति अपने में ही एकाग्ररूप से परम आनंद का अनुभव करती है, आनंद के लिये कहीं बाहर जगत की ओर नहीं देखना पड़ता। जहाँ तेरे अगाध निधान भरे हैं, वहाँ देखने से तुझे परम आनंदनिधान की प्राप्ति होगी। धर्मात्मा कहते हैं कि अरे, हमें अपना अपूर्व निधान मिला; इस निधान के निकट हम जगत को सदा तृणवत् देखते हैं। इसप्रकार जिन्हें अपने निधान की अचिंत्य महिमा आयी है, वे ज्ञानी परम वैराग्य से शांतचित्त होकर गुणरूप से अपने आनंद-निधान का अकेले ही उपभोग करते हैं और स्वकार्य करते-करते मोक्ष को साधते हैं।

सिद्ध भगवंतों का पंथ तो एक शुद्धभावरूप ही है; शुद्धभाव से चलायमान मुनि मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। जीव चाहे जिस देश में चला जाये और चाहे जो करे, लेकिन शुद्धभाव के बिना वह कभी मोक्ष नहीं पा सकता; इसलिये सर्वप्रकार से शुद्ध परिणाम ही कर्तव्य है।

मोक्षार्थी जीव स्व-कार्य को किसप्रकार साधता है ?

[नियमसार गाथा 155 से 158 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से : मार्गशीर्ष शुक्ला 1 से 5]

हे भव्य! सहज तत्त्व की आराधना में तू अछिन्न रहना... आनंद से उसकी आराधना करना। जगत के भय से तू अपनी आराधना से चलायमान न होना। जैनशासन में कहे गये इस परम गंभीर चैतन्यतत्त्व का कोई विरले ही अनुभव करते हैं। इसलिये लौकिक जीवों का साथ छोड़कर तू अकेला ही अपने स्वकार्य में तत्पर रहना और अंतर में अपने ज्ञाननिधान को भोगना। जगत तेरी निंदा या प्रशंसा करे—उसके सन्मुख देखने को न खड़े रहना, बल्कि परम आनंदभाव से उल्लासमान अपने स्वतत्त्व में सन्मुख होकर उसकी साधना करना। आत्मा के साधने में लौकिक भय नहीं रखना।

—०००—

हे भव्य! शुद्धनिश्चयस्वरूप परमात्मतत्त्व का ध्यान महा आनंदरूप है, और ऐसे परमात्मध्यान को ही जिनभगवान ने मोक्ष के लिये आवश्यक क्रिया कहा है, मोक्ष के लिये ऐसे उत्तम स्वकार्य को निरंतर साधना।—किसप्रकार साधना ? सो कहते हैं।

सर्वप्रथम स्वभाव और परभाव की भिन्नता के अभ्यासरूप भेदज्ञान द्वारा मोक्ष के कारणरूप स्वभाव-क्रिया को, सत्-क्रिया को स्पष्टरूप से जानना। राग से पृथक् ऐसी शुद्धभावरूप क्रिया ही मोक्ष के कारणरूप क्रिया है, अर्थात् परमात्मतत्त्व में परिणति की एकाग्रता मोक्ष की सत्-क्रिया है। अन्य कोई शुभाशुभ क्रिया मोक्ष का कारण नहीं;—ऐसा भलीभाँति जानकर मुमुक्षु को अपने एकत्व में रहकर स्वकार्य को साधना चाहिए। चौथे गुणस्थान से ऐसी साधना प्रारंभ होती है।

आनंदधाम ऐसे स्वतत्त्व की साधना में लीन मुनियों के तो लोगों के संग की आसक्ति छूट गई है, और चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को भी सर्व बाह्य संग की प्रतीति छूटकर अपने स्वतत्त्व का ही प्रेम है, तथा उसी को साधने में वह तत्पर है।

अहा, मेरा आत्मा ऐसा महानतत्त्व है कि जिसमें से मात्र शांति ही प्रगट होती है। उसमें एकाग्र होकर मैं एकाकी अपनी शांति का वेदन करता हूँ, उसमें जगत के किसी अन्य संग का मुझे क्या काम ? मेरी शांति कहीं पर के संग से नहीं आती, परसंग रहित, अकेले स्व में रहकर मैं अपनी शांति का वेदन करता हूँ। मेरी पर्याय अंतर की ओर उन्मुख होकर अपने शुद्धतत्त्व का ही संग करती है—एकता करती है; अपने द्रव्य और पर्याय के भेद में मैं नहीं रुकता। पर के संगरहित और द्वैत के विकल्परहित, एकत्व में लीन एकाकी होकर मैं अपनी मोक्षसुख को साधता हूँ—यही मेरा कार्य है।

इसप्रकार स्वतत्त्व को और उसमें एकाग्र-पर्यायरूप सत्क्रिया को जानकर सर्वसंग से पार ऐसे एकत्व चैतन्य के लक्ष से एकाकी होकर मौनरूप से स्वकार्य को साधना। कोई अज्ञानी निंदा करे—ईर्षा करे, तथापि अपनी साधना में भंग करना नहीं, और अपनी अंतर्मुख परिणति को छिन्न-भिन्न न होने देना तथा लोकसंबंधी संकल्प-विकल्पों को एक ओर रखकर अपना कार्य अपने में साधना। अरे, मेरे अलौकिक अचिंत्य चैतन्यतत्त्व की अनुभूति के समक्ष यह लोक तो तृण-समान प्रतीत होता है ! संसारी जीव ऐसे चैतन्य को नहीं देखते, फिर उनके वचन का क्या मूल्य ? चैतन्य का कार्य क्या, चैतन्य की वास्तविक क्रिया क्या ? उसमें कैसी अकषाय शांति है ? उसकी जिसे खबर नहीं, ऐसे मूर्ख जीव कदाचित् उनकी निंदा करें, तथापि धर्मी मुमुक्षु जीव आत्मा को साधनेरूप निजकार्य को नहीं छोड़ते। अहा, मेरी पर्याय अंतरतत्त्व में प्रवेश करके मोक्षसुख की साधना कर ही रही है, ऐसा महान कार्य मेरी पर्याय में सध रहा हो, वहाँ जगत की परवाह क्या ? जगत की स्पृहा छोड़कर आत्मा के एकत्व में आया, तब तो ऐसे सम्यक्त्वादिरूप महान कार्य हुआ है। अब धर्मी जीव लोकभय से उसमें भंग नहीं पड़ने देता।

भाई, मोक्ष की क्रिया तो पर्याय है, और वह पर्याय अंतर के शुद्धतत्त्व के आश्रित है। मोक्ष की सच्ची क्रिया तो शुद्ध पर्याय है और उस पर्यायरूप आत्मा स्वयं होता है, उसमें दूसरे का संग नहीं है, वचनविकल्प नहीं है, मात्र अपने परमात्मतत्त्व का ही ध्यान है। ऐसी सत्य-क्रिया को जानकर हे मुमुक्षु ! तू संसार से निरपेक्ष, अकेला ही उसे निरंतर साधना। जगत उसे जाने या न जाने, प्रशंसा करे या निंदा, उसे देखने को मत खड़ा रहना, परंतु परम आनंदभाव से उल्लासमान अपने तत्त्व की ओर उन्मुख होकर उसी की साधना करना। आत्मा को साधने में लोकभय नहीं रखना।

इस जगत में शाश्वत परम सुख प्रदान करनेवाला अपना परम चैतन्यतत्त्व ही है, इसके अतिरिक्त जितने प्रशस्त-अप्रशस्त विकल्प हैं, वे सब संसार-दुःख के ही मूल हैं। बाह्य भाव या लोकसंग से स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। अनेक प्रकार के विचित्र जीव इस संसार में हैं, उनके साथ वचन-विवाद करना ठीक नहीं है। महान भाग्योदय से जिनमार्ग को प्राप्त करके, उसमें कहे गये परमात्मतत्त्व को स्वयं अकेले-अकेले अपने अंतर में साध लेने जैसा है। जिस तत्त्व में प्रवेश करने से शांति का वेदन हो, ऐसा तो एक निजतत्त्व ही है—जो सदैव महा आनंद प्रदान करनेवाला है। हे जीव! ऐसे तत्त्व की गहरायी में उतरकर तू उसे साध... उसी का अनुभव कर। लोक के किसी कल्पनाजाल का उसमें प्रवेश नहीं है।

द्रव्य-गुण-पर्यायरूप प्रत्येक वस्तु भगवान सर्वज्ञदेव के ही शासन में कही गई हैं। अन्य कोई यथार्थ वस्तुस्वरूप को नहीं जान सके। इसलिये हे भाई! महा भाग्य से सर्वज्ञ के मार्ग को प्राप्त करके तू अपने स्वाधीन द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर, जगत से निस्पृह होकर एकाकी आत्म-आनंद को साधना। दुःखपर्याय छोड़कर सुखपर्यायरूप होना है, तो सुखरूप कौन होगा? तू ही अपने द्रव्य-गुण के सामर्थ्य से सुखपर्यायरूप होगा, द्रव्य-गुणरूप त्रिकाल रहकर आत्मा स्वयं अंतरोन्मुखता द्वारा सुख-पर्यायरूप परिणमन करता है। द्रव्य-गुण-पर्याय को न माने तो ऐसा कार्य नहीं हो सकता। जगत के जीव तो ऐसे तत्त्व को नहीं जानते, ज्ञानी की अंतरदशा को नहीं पहचानते, इसलिये वे तो अज्ञानवश सत् की निंदा करते हैं; आरोप लगाते हैं, ईर्षा करते हैं, लेकिन साधक जीव उसकी परवाह नहीं करता; वह तो जानता है कि अरे, सुख के लिये हमें जगत से क्या प्रयोजन है? अपने सुख के लिये अपने अंतर के द्रव्य-गुणस्वभाव के साथ ही मेरा प्रयोजन है। इसलिये निजस्वभाव के आश्रय से मौनरूप मैं अपने कार्य को साध ही रहा हूँ अर्थात् अपने एकत्व के सुख का मुझे अपने में अनुभव हो ही रहा है। मेरा निजतत्त्व स्वयं ही शाश्वत सुखदायक है, उसी का मैं आलंबन कर रहा हूँ, फिर अन्य कोई निंदा करता है तो करे, उसका मुझे भय नहीं है, प्रशंसा करे तो उसकी स्पृहा नहीं है।

अहा, देखो तो सही, जैनशासन में ऐसा निरपेक्ष, मात्र आत्मा का ही अवलंबन लेने वाला मोक्षमार्ग है। ऐसे जैनशासन को प्राप्त करके स्वयं अपने कार्य को साध लेना चाहिये, अन्य जीवों के साथ वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिये। जगत तो विचित्र जीवों का समूह है, उसमें सभी जीव ऐसे गंभीर चैतन्यतत्त्व को समझ लें—यह तो असंभव है; कोई विरले जीव ही

चैतन्यतत्त्व का अनुभव करते हैं, इसलिये तू लौकिक जीवों का संग छोड़कर अंतर में अपने ज्ञान-निधान का उपभोग करना। अपने सहज तत्त्व की आराधना में तू अछिन्न रहना... आनंद से उसका आराधन करना। जगत के भय से तू अपनी आराधना से चलित नहीं होना। हे मुमुक्षु! निर्विकल्प होकर अपनी परिणति को परम आनंदमय अपने सहज तत्त्व में लगाना।

'आत्मप्रवाद' अर्थात् आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले जो शास्त्र हैं, उनमें कहे गये परमात्मस्वरूप को जानकर जो मुमुक्षु स्वयं आत्मज्ञानरूप परिणमित हुआ है—ऐसा परम आत्मज्ञानी जीव लोकनिंदा के भय को छोड़ देता है। लोग चाहे जो कहें, निंदा करें, तिरस्कार करें, यह सब तो संसार में चलता ही है, उसमें मुझे क्या? मैं तो अपने परमात्मतत्त्व के शाश्वत सुख को अपने में साध रहा हूँ। ऐसे परमात्मतत्त्व को न जाननेवाले पशु समान जीव चाहे कुछ बोलें, उनकी बोली को मूल्य क्या? मेरे चैतन्यसुख के समक्ष दुनियाँ तो तृणतुल्य लगती है। इसप्रकार जिसने अंतर में परम चैतन्यतत्त्व के रस का आस्वादन किया है, उस मुमुक्षु को बाह्यविकल्प या लौकिक संग रुचिकर नहीं लगता; उसकी परिणति अपने अंतर-आत्मतत्त्व के सिवा अन्यत्र कहीं एकाग्र नहीं होती; अन्यत्र कहीं उसे सुख प्रतीत नहीं होता। अरे, मेरे चैतन्यसुख को जगत की अपेक्षा ही नहीं है, फिर उसका भय कैसा? इसप्रकार निर्भयरूप से, जगत से निरपेक्ष होकर धर्मी अपने परमतत्त्व को साधता है। अरे, संसार को प्रसन्न रखने के लिये मैं कुछ नहीं करता, मैं तो अपने आत्मा की प्रसन्नता के लिये अर्थात् आत्मानंद का वेदन करने के लिये, लोकसंग छोड़कर एकाकी चैतन्य के एकत्व को साध रहा हूँ।

क्षमारूपी सुदृढ ढाल

दुष्ट जीवों द्वारा चाहे जितना उपद्रव हो, परंतु जिन्हें कभी क्रोध उत्पन्न नहीं होता, ऐसे क्षमावन्त धर्मात्माओं का वे दुष्ट जीव कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। क्षमारूपी उत्तम ढाल के सामने चाहे जैसे उपद्रव का प्रहार व्यर्थ जाता है। इसलिये आत्मशुद्धि की सिद्धि के लिये सदा उत्तम क्षमा धारण करके, शत्रु पर भी क्रोध नहीं करना।—यह उत्तम पुरुषों का कर्तव्य है।

सागर में दिगम्बर जैन शिक्षण-शिविर : एक दृष्टि

[लेखक : श्री कपूरचंद्र आयुर्वेदाचार्य, सागर (म.प्र.)]

जिन्होंने सागर में आध्यात्मिक चेतना उत्पन्न करनेवाले जैन शिक्षण शिविर जैसे महान ज्ञानयज्ञ को आयोजित करने की प्रेरणा जगाई है, जो स्वयं अनवरत अध्यात्मरस का आस्वादन कर रहे हैं, जो अपनी दिव्य देशना द्वारा भारतीय जन-मानस को जैनधर्म की ओर आकृष्ट कर रहे हैं, जिसकी पवित्र वाणी में असाधारण सामर्थ्य और आकर्षण है, जिनकी छाया में सैकड़ों सुयोग्य शिष्यों का सृजन हुआ है, जो जिनवाणी का देशव्यापी उद्घोष कर रहे हैं, जिनके पवित्र आशीर्वाद से सागर नगर में जैन शिक्षण-शिविर का पन्द्रह दिवसीय समारोह सानंद सफल हुआ, ऐसे युगपुरुष, मंगलमूर्ति, देश के महान अध्यात्मवेत्ता श्रद्धेय सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी महाराज चिरकाल तक मोक्षमार्ग के मूलरूप, कल्याणकारी सम्यग्दर्शन के माहात्म्य को निरंतर जगाते रहें, इस मंगल-कामना के साथ यह लेख आरंभ कर रहा हूँ।

शिविर के संबंध में प्रथम तीन सम्मतियां उद्धृत करता हूँ। जैन समाज के पत्रों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाले मासिक 'सन्मति संदेश' के यशस्वी संपादक श्री प्रकाश हितैशी के शब्द हैं 'सागर में इस तरह का शिविर पहला अचरज और इस तरह का शानदार सफल शिविर दूसरा अचरज।'

भारत के जैन विद्वानों में पहली पंक्ति के विद्वान सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंद्रजी वाराणसी के मत से 'भारत के किसी भी स्थान पर ऐसा शिविर अब तक नहीं हुआ है, जहाँ एक साथ इतने अधिक विशिष्ट विद्वान इतनी लंबी अवधि तक रुक पाये हों। सागर जैन समाज इस महान उपलब्धि के लिये सौभाग्यशाली है, और बधाई का पात्र भी।' सौराष्ट्र के मनीषी पंडित खेमचंदभाई की अपनी राय इस तरह है : 'निःसंदेह सागर का यह शिक्षण शिविर अत्यंत उपयोगी एवं सफल रहा; सागर का जैसा नाम है, वैसा उसका काम भी है।'

मध्यप्रदेश में सागर नगर का महत्वपूर्ण स्थान है। सागर का अपना गौरव है, यहाँ विश्व के बहुचर्चित विधि विशेषज्ञ डॉ. हरीसिंहजी गौर जिन्होंने सागर विश्वविद्यालय की स्थापना में

अपनी दो करोड़ से अधिक राशि समर्पित कर दुनियां में दानशीलता का एक आदर्श कार्य किया है, तथा भारत के महान आध्यात्मिक संत एवं भारतीय दर्शनों के उद्भट विद्वान् पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी न्यायाचार्य जैसे नरपुंगवों ने इसे अपनी कार्यभूमि बनाया है। जैन संख्या की दृष्टि से भी सागर नगर का विशेष महत्त्व है। ऐसे नगर में जहाँ कि अनेक शिक्षण-संस्थायें हैं, अनेक उद्भट विद्वान हैं, वहाँ पर शिविर जैसे आयोजनों का होना एकदम स्वाभाविक है। यही कारण है कि नगर में 14 नवम्बर से 28नवम्बर 71 तक बहुचर्चित, श्री जैन शिक्षण-शिविर स्वस्थ एवं शांत वातावरण में सानंद संपन्न हो गया। सागर नगर 15 दिन तक आध्यात्मिक वातावरण का सृजन करता रहा। कर्म और दर्शन जैसे नीरस कहे जानेवाले विषय को विशला जनसमूह ने जिस तन्मयता से, उत्सुकता एवं जिज्ञासाभाव से हृदयंगम किया, वह शिविर की बड़ी भारी उपलब्धि है।

जैन शिक्षण-शिविर के आयोजन का भाव सागर जैन समाज के मन में पिछले दो वर्ष से हो रहा था। श्रीमान् पंडित हिम्मतलालभाई जोबालिया एवं श्री पंडित चिमनलालभाई सोनगढ़ के सागर पधारने से स्थानीय समाज पर अच्छा अनुकूल प्रभाव पड़ा और काफी जल्दी ही शिविर लगाने का निश्चय करने को तत्पर हो गया। सागर मुमुक्षु मंडल के अध्यक्ष श्रीमान् बाबू प्रकाशचंदजी वकील मानकचौकवाले जो कि नगर के उत्साही सौम्य समाजसेवी युवक हैं, आपने मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में स्थानीय समाज की बैठक बुलायी और सर्वसम्मति से सागर में शिविर लगाने का निर्णय ले लिया। इसी बैठक में समाजभूषण श्रीमन्त सेठ भगवानदासजी शोभालालजी को यह भार सौंपा गया कि वे सोनगढ़ जाकर श्रद्धेय पूज्य कानजीस्वामी एवं वहाँ के समस्त विद्वानों को सागर पधारने का सागर समाज की ओर से विधिवत् निमंत्रण दे आयें तथा श्रद्धेय स्वामीजी की सुविधानुसार ही शिविर की तिथियाँ निश्चित कर लेवें; श्रद्धेय सेठ साहब ने इस दायित्व का निर्वाह बड़ी ही कर्तव्यनिष्ठा, लगन, एवं आत्मीयता से किया। स्वास्थ्य अनुकूल न होने पर भी आप इसी निमित्त रखियाल भी गये और वहाँ पर कितने ही विद्वानों से सागर आने की स्वीकृति प्राप्त की, श्रीमंत सेठ साहब के व्यक्तिगत परिचय और प्रभाव का ही यह सुपरिणाम हुआ कि सागर में शिविर के अवसर पर एक दर्जन से अधिक विशिष्ट विद्वानों का इतनी लंबी अवधि तक संगम हो सका। निमंत्रण दे आने के बाद शिविर का काम श्रद्धेय सेठ साहब तथा उनके परिवार का अपना जैसा ही काम हो

गया और दिन-रात इस धुन में लगे रहे कि सागर का शिविर ऐसा बन जाये जिसमें किसी प्रकार की कमी न रह जाये। शिविर-समिति के दोनों संरक्षक श्रद्धेय पंडित मुन्नालालजी रांधेलीय वर्णी न्यायतीर्थ एवं श्रीमंत सेठ साहब भगवानदासजी को बराबर ऐसा विकल्प बना रहा कि शिविर सानंद सफल हो जाये।

सागर शिविर का अपना एक अलग महत्त्व है। देश के शीर्षस्थ विद्वानों ने एक साथ बैठकर बहुत ही सद्भावना तथा आत्मीयता से गहन से गहन विषयों पर चर्चा-विमर्श किया। किसी तरह की कटुता अथवा पारस्परिक मनोमालिन्य देखने में नहीं आया। मंच पर एकसाथ दो दर्जन से अधिक विशिष्ट विद्वानों को बैठा देखकर श्रोता-समूह की प्रसन्नता का पारावार न था। सागर शिविर के अवसर पर विद्वानों की उपस्थिति बड़ी ही हर्षोत्पादक रही।

सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंद्रजी वाराणसी, सोनगढ़ के प्रसिद्ध विद्वान एवं वक्ता पंडित खेमचंद्रभाई, प्रशममूर्ति पंडित दयाचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री सागर, विद्वतपरिषद् के महामंत्री एवं संस्कृत के उद्भट विद्वान पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय के टीकाकार पंडित मुन्नालालजी रांधेलीय वर्णी न्यायतीर्थ सागर, पंडित जगन्मोहनलालजी कटनी, युवा पीढ़ी के ओजस्वी वक्ता पंडित हुकुमचंदजी शास्त्री जयपुर, समाजरत्न श्री पंडित जयकुमारजी छिंदवाड़ा, पंडित बाबूभाई फतेहपुर, श्रद्धेया विमलादेवीजी बांदा, 'वीर' के संपादक श्री पंडित परमेष्ठीदासजी ललितपुर, 'सन्मति-संदेश के संपादक श्री प्रकाशचंद्रजी हितैषी दिल्ली, बुन्देलखंड के सुपरिचित एवं साधुप्रकृति पंडित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि, श्री पंडित चिमनलालभाई सोनगढ़, श्री पंडित माणिकचंद्रजी न्याय-काव्यतीर्थ सागर, श्री पंडित दयाचंद्रजी साहित्याचार्य सागर, श्री बाबू युगलकिशोरजी एम.ए. कोटा, श्री पंडित धर्मचंद्रजी शास्त्री सागर, श्री पंडित नेमिचंद्रजी रखियाल, श्री पंडित रतनचंद्रजी एम.ए. विदिशा, श्री पंडित ताराचंद्रजी सर्राफ सागर, श्री पंडित कपूरचंद्रजी केसली, श्री पंडित दामोदरदासजी शास्त्री सागर, श्री पंडित केशरीमलजी बंडी इंदौर, श्रीमती कमलादेवीजी विदिशा, श्रीमती शकुन्तलादेवीजी ललितपुर, बालब्रह्मचारिणी श्री भानुबहिन सोनगढ़, श्री पंडित श्यामलालजी ललितपुर, श्री पंडित मुन्नालालजी समगौरया सागर, पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, श्री पंडित बाबूलालजी अशोकनगर, श्री पंडित ज्ञानचंद्रजी विदिशा, श्री पंडित

ज्ञानचंद्रजी शास्त्री काव्यतीर्थ जबलपुर, पंडित शिखरचंद्रजी शास्त्री एम.एस. हटा, श्री पंडित मोहनलालजी शास्त्री जबलपुर, पंडित बारेलालजी वैद्य टीकमगढ़, श्री पंडित जतीशचन्द्रजी सोनगढ़, पंडित सुंदरलालजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ककरवाहा, श्री पंडित गुलाबचंद्रजी 'पुष्प' ककरवाहा, श्री पंडित कपूरचंद्रजी सागर, श्री पंडित राजधरलालजी शास्त्री सागर, श्री पंडित विजयकुमारजी बरायठा, श्री पंडित बाबूलालजी बरायठा, श्री पंडित शीलचंद्रजी बरायठा, श्री सुखानंदजी शास्त्री रांची, श्री पंडित केशरीमलजी धवल खानदेश, श्री पंडित पदमचंद्रजी शास्त्री बरायठा, श्री पंडित गोविन्ददासजी खडेरी, इसके अतिरिक्त तीस के लगभग त्यागीजन शिविर में सोत्साह सम्मिलित हुए। जैन शिक्षण शिविर के प्रबंधक की दृष्टि से प्रबंध-समिति में 6 उपसमितियाँ विविध व्यवस्थाओं को संपन्न करने के लिए गठित की थीं, जिनके कर्तव्यनिष्ठ संयोजकों एवं सदस्यों ने अपनी जिम्मेवारी पूरी कर्तव्यनिष्ठा से वहन की। नगर में जैन समाज की आबादी को दृष्टिगत रखते हुए तीन स्थानों में—श्री वर्णी भवन मोराजी, श्री तारणतरण भवन कटरा, तथा श्री तारणतरण चैत्यालयजी इतवारीटोरी पर कक्षायें लगाने का निश्चय किया जो बहुत ही उपयोगी और सुविधाजनक रहा। इन तीनों स्थानों में तीन हजार से अधिक लोगों ने नियमितरूप से अध्ययन में भाग लिया। आठ सौ के लगभग छात्र-छात्राओं ने पठित पुस्तक की परीक्षा दी, शेष प्रौढ़ पुरुषों तथा महिलाओं की परीक्षायें नहीं ली गईं।

दोपहर में तीन बजे से चार बजे तक प्रतिदिन शंका-समाधान का कार्यक्रम बहुत ही उपयोगी तथा ज्ञानवर्धक रहा, शंका-समाधान का कार्य पंडित फूलचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री ने बहुत ही शानदार ढंग से संपन्न किया। पंद्रह दिनों में चार सौ से अधिक प्रश्नों के शास्त्रसम्मत समाधान पंडितजी ने बड़े ही रोचक तथा मधुर शैली में प्रस्तुत किये। किसी तरह की खीझ या तनाव का अंश भी देखने में नहीं आया। श्री तारण तरण भवन कटरा में शंका-समाधान के समय दो हजार से अधिक की उपस्थिति रहती थी और प्राय: सभी विद्वान इस समय नियमित उपस्थित होते थे तथा श्रद्धेय पंडित फूलचंद्रजी के ज्ञान-भंडार की सराहना करते सुने गये।

श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री प्रात: 7.00 से 8.00 बजे तक श्री मोक्षमार्गप्रकाशक का सातवाँ अध्याय पढ़ाते थे; पश्चात् 8.00 बजे से 9.00 बजे तक प्रवचन श्री वर्णीभवन मोराजी में होता था, जहाँ की उपस्थिति लगभग चार हजार रहती थी, रात्रि का शास्त्र-प्रवचन आठ से

दस बजे तक, श्री गोराबाई दिगंबर जैन मंदिर के सामने नव-निर्मित पांडाल में होता था, जहाँ की उपस्थिति बारह हजार से अधिक का अनुमान है। पंडाल की शोभा अपने ढंग की ही थी, विद्युत बल्ब एवं ट्यूब-लाईटों से जगमगाते पंडाल के बीचोंबीच मंच बनाया गया था। जिस पर अतिथि तथा विशिष्ट विद्वानों को बैठने की व्यवस्थ्या की गई थी। जिनमंदिरों के शिखरों पर विविध रंगों के बल्बों की रोशनी अनुपम थी, पाण्डाल इतना बड़ा बनाया गया था जिसमें दस हजार से अधिक श्रोता बैठ सकते थे। पाण्डाल के बाहर भी लोगों को बैठने की व्यवस्था करनी पड़ी थी, पाण्डाल में प्रवेश के लिये एक सुंदर प्रवेशद्वार सीमेंट की सुंदर जालियों की कारीगरी से बनाया गया था, जिस पर रोशनी इस तरह से की गई थी कि जो दूर से ही लोगों को आकृष्ट करती थी। ध्वनि-विस्तारक यंत्रों का प्रबंध इतना शानदार रहा कि हजारों श्रोताओं को सुनने संबंधी कोई भी शिकायत नहीं रही। प्रातःकालीन शास्त्र-प्रवचन श्रद्धेय पंडित खेमचंदभाई करते थे। रात्रि में प्रथम प्रवचन स्थानीय तथा बाहर के विशिष्ट विद्वानों द्वारा तथा द्वितीय प्रवचन श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री जयपुर करते थे। श्री खेमचंदजीभाई की विद्वत्ता, भावाभिव्यंजन क्षमता तथा व्यक्तित्व की मधुरता मोहक थी। श्री खेमचंदभाई किसी भी टीका-टिप्पणी, दोष-दर्शन तथा आक्षेपों से दूर रहनेवाले पुरुष हैं। उनका काम विषय-प्रतिपादन तथा जितना संभव होता, सात्विक उदाहरणों द्वारा कठिन विषय को सरल बनाना होता था; पांडित्य की अपेक्षा उनके वाणी-माधुर्य, स्वभाव की सरलता तथा आलोचना रहित शैली ने जनता को मुग्ध बनाया।

श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री की व्याख्यान-शैली अपने ढंग की विशेष है। शिविर में श्रोताओं की उपस्थिति बढ़ाने में श्री शास्त्री को बहुत अधिक श्रेय दिया जा सकता है। जैनेतर जनता भी आकृष्ट हुई। श्री पंडित हुकमचंदजी विषय की गंभीरता को हास्य-मिश्रित उदाहरणों से इतना सरल बना देते थे कि श्रोता स्फूर्त हो जाता और वह नये उत्साह से विषयों में टिकने या उसे पकड़ने को तैयार हो जाता। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि दर्शन और अध्यात्म जैसे शुष्क कहे जानेवाले विषय को सुनने के लिये इतनी विशाल उपस्थिति लगातार पंद्रह दिन तक बनी रही। बीच में कभी कोई न उठता, न शोर मचाता और न ऊँघता था। रात्रि में प्रवचन करनेवाले विद्वान इसप्रकार रहे:—

श्रीमान् पंडित दयाचंदजी सिद्धांतशास्त्री सागर, श्रीमान पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी, श्रीमान् पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, श्रीमान् पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री वाराणसी, पंडित जयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाडा, ब्रह्मचारिणी साहित्यदर्शनाचार्य विमलादेवीजी बांदा, श्रीमान पंडित खेमचंदजीभाई सोनगढ़, श्री बाबूभाई फतेहपुर, श्री जुगलकिशोरजी कोटा।

14 नवम्बर को प्रातः 7 बजे से कटरा के सुसज्जित पाण्डाल में स्थानीय तथा बाहर से पधारे अतिथि विद्वानों का पुष्पमालाओं द्वारा स्वागत कर बैण्डबाजों के साथ जुलूस के रूप में श्री वर्णीभवन ले जाया गया और श्रीमान पंडित खेमचंदजीभाई की अध्यक्षता में श्रीमान् पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री ने शिविर का विधिवत् उद्घाटन किया। उद्घाटन के पश्चात् श्री पंडित खेमचंदजीभाई ने शास्त्र-प्रवचन किया। इसी दिन रात्रि में आठ बजे कटरा के सुसज्जित पाण्डाल में श्री पंडित हुकुमचंदजी शास्त्री ने शास्त्र-प्रवचन किया। इसके पश्चात् शिविर के प्रचार-मंत्री श्री कपूरचंद आयुर्वेदाचार्य ने स्थानीय तथा आगत् विद्वानों का परिचय कराया। शिविर-समिति के अध्यक्ष श्री सेठ डालचंदजी जैन विधायक ने सभी विद्वानों का पुष्पमालाओं द्वारा स्वागत किया। इसी दिन श्रद्धेय पंडित मुन्नालालजी रांधेलीय वर्णी, न्यायतीर्थ को जीवन के 78 वर्ष पूरे कर लेने के उपलक्ष में श्री पंडित खेमचंदभाई ने पुष्पमाला पहनाकर शुभ-कामना प्रगट की।

प्रतिदिन के नियमित कार्यक्रमों जैसे-तीन समय कक्षायें चलना, दोपहर में शंका-समाधान, दोनों समय शास्त्र-प्रवचन के अतिरिक्त दिनांक 16 नवम्बर को रात्रिकालीन शास्त्र-प्रवचन के बाद श्रीमान् पंडित फूलचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री ने बनारस में बन रहे शोध-संस्थान का परिचय कराया और वर्तमान में ऐसे शोध-संस्थानों की आवश्यकता पर जोर दिया। दूसरे दिन प्रथम शास्त्र-प्रवचन के पश्चात् शिविर के प्रचार-मंत्री श्री कपूरचंद आयुर्वेदाचार्य ने शोध-संस्थान का विस्तृत परिचय दिया और शोध-संस्थान से होनेवाले निकट तथा दूरगामी परिणामों की उपलब्धियों पर ओजस्वी शैली में प्रकाश डाला। श्री आचार्य ने कहा—'सागर चूंकि पूज्य वणीजी की कार्यभूमि रहा है, और वर्णीजी की चरण-रज से धन्य और पवित्र हुआ है। सागर को सागर जैसा गौरव दिलाने में पूज्य वर्णीजी ने कोई कसर नहीं उठा रखी थी, इससे

यदि शोध-संस्थान के निर्माण में सागर का योगदान न रहा तो यह सागर की परंपरा, संस्कृति तथा गौरव के अनुरूप न होगा।' यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बिना किसी सार्वजनिक अपील के सागर समाज ने 5800) की निधि इकट्ठी कर वर्णी शोध-संस्थान के निमित्त श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री को समर्पित की गयी। इस निधि का संग्रह करने में श्रीमंत सेठ भगवानदासजी ने गहरी रुचि ली, एतदर्थ वे बधाई के पात्र हैं।

दिनांक 18 नवंबर को, शास्त्र-प्रवचन के पश्चात् जैन समाज के मूर्धन्य विद्वान श्रद्धेय पंडित माणिचंदजी कौन्देय न्यायाचार्य, फिरोजाबाद के आकस्मिक निधन की सूचना पाकर श्रीमान् पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य एवं श्रीमान् पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री ने स्वर्गीय पंडितजी के जीवन तथा कृतित्व पर प्रकाश डाला, शिविर के प्रचार-मंत्री श्री कपूचंद आयुर्वेदाचार्य ने पंडितजी के निधन पर गहरा शोक प्रगट किया तथा एक शोक-प्रस्ताव पढ़ा, जो जन-समूह की स्वीकृतिपूर्वक स्व. पंडितजी के परिवार को भेजा गया। अंत में दो मिनिट के मौन के पश्चात् सभा विसर्जित की गयी।

20 नवंबर को रात्रि में शास्त्र-प्रवचन के पश्चात् भारत के प्रसिद्ध जैन नृत्यकार श्री झंडेलाल जैन के नृत्य-कार्यक्रम रखे गये, जिसे उपस्थित जन-समूह ने बहुत पसंद किया।

22 नवंबर को फतेहपुर से श्रीमान् पंडित बाबूभाई एवं कोटा से श्री युगलकिशोरजी 'युगल' पधारे; इससे कार्यक्रमों में और भी आकर्षण बढ़ गया। श्री बाबूभाई एक मंजे हुए वक्ता हैं तथा इनकी सरल शैली ने जनता को मुग्ध कर दिया। श्री युगलकिशोरजी ने बुद्धिजीवियों में एक अच्छा स्थान बना लिया है।

25 नवंबर को श्री तारणतरण जयंती का महोत्सव बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया गया। उस दिन दोपहर में श्री शास्त्रजी की पालकी तथा विमान का जुलूस बड़े शानदार ढंग से निकाला गया तथा रात्रि में प्रवचन-पाण्डाल में ही जयंती-महोत्सव की सार्वजनिक सभा श्रीमान् पंडित खेमचंदजी के सभापतित्व में आयोजित की गयी। प्रमुख वक्ताओं के रूप में श्रीमान् पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री, पंडित दयाचंदजी सिद्धांतशास्त्री, श्री कपूरचंदजी आयुर्वेदाचार्य, श्री पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य, श्री पंडित हुकुमचंदजी, श्री जयकुमारजी शास्त्री, श्री कपूरचंदजी समैया ने भाग लिया। श्री ऋषभ समैया एवं श्री सरमनसिंह निर्मल ने

कविता-पाठ किया। सभा का संचालन श्रीमान् सेठ डालचंदजी विधायक ने बहुत ही आकर्षक ढंग से संपन्न किया। अध्यक्षीय भाषण के पश्चात् जयंती-समिति के मंत्री श्री कैलाशचंदजी एडवोकेट ने आभार प्रगट किया।

27 नवंबर को तीन विद्वानों का अभिनंदन किया गया। रात्रि में शास्त्र-प्रवचन के पश्चात् सेठी ग्रंथमाला के प्रमुख श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी बम्बई की अध्यक्षता में श्रीमान् पंडित खेमचंदजीभाई, श्रीमान् बाबूभाई तथा श्रीमान् पंडित हुकमचंदजी शास्त्री को अभिननंदन-पत्र समर्पित किये गये। आरंभ में श्री बाबू युगलकिशोरजी 'युगल' ने श्रद्धेय कानजीस्वामी के प्रति एक सुंदर कविता पढ़ी। शिविर के मंत्री श्री कपूरचंदजी भायजी ने खेमचंदभाई के व्यक्तित्व पर संक्षिप्त प्रकाश डाला और शिविर-समिति के अध्यक्ष श्री सेठ डालचंदजी ने अभिनंदन-पत्र पढ़कर श्रद्धेय खेमचंदभाई को समर्पित किया। शिविर के प्रचारमंत्री श्री कपूरचंद्रजी आयुर्वेदाचार्य ने श्री बाबूभाई एवं श्री पंडित हुकुमचंदजी शास्त्री के पांडित्य, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तृत प्रकाश डाला। श्री कपूरचंदजी ने श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री को आज का टोडरमल निरूपित किया। हुकमचंदजी की निर्भयता, स्पष्टवादिता तथा विषय-प्रतिपादन क्षमता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। इसके पश्चात् अभिनंदन-पत्र पढ़कर श्री हुकमचंदजी को समर्पित किया। द्वितीय अभिनंदन-पत्र श्री मंत्री कपूरचंदजी भायजी ने श्री बाबूभाई को पढ़कर समर्पित किया। अभिनंदन-पत्रों के उत्तर में तीनों विद्वानों ने कृतज्ञता एवं आभार प्रगट किया। अध्यक्ष महेन्द्रकुमारजी सेठी ने शिविरों की आवश्यकता पर जोर दिया तथा सागर समाज को शिविर की शानदार सफलता पर हार्दिक बधाई दी।

28 नवम्बर को प्रतिदिन के कार्यक्रमों के अतिरिक्त दोपहर में 11 बजे श्रीजी के विमान का जुलूस श्री स्थानीय गोराबाई जैनमंदिर कटरा के सामने से आरंभ हुआ, जिसे शिविर-समिति ने आयोजित किया था। जुलूस की सज्जा और व्यवस्था दर्शनीय बन गयी थी, जन-समुदाय उमड़ पड़ा था। संगीत मंडलियाँ, स्वयंसेवकों की कतारें, महिलाओं का अनुशासनबद्ध होकर चलना, पुरुष वर्ग तथा छात्र-छात्राओं का जो अनुशासन देखने में आया, वह एक अनुपम दृश्य था। जिले के ग्रामों से हजारों जैनबंधु सागर आ गये थे। इससे जूलूस की

लंबाई काफी बढ़ गई थी। हाथी, घोड़े, बैण्ड, शहनाई तथा लहराते केशरिया झण्डों, अनेक ऐतिहासिक चित्रों की मोटरगाड़ियों पर सजावट से जुलूस अपने ढंग का प्रभावक तथा अनोखा बन गया था। बुजुर्गों का कहना है कि इतना विशाल और व्यवस्थित तथा प्रभावना बढ़ानेवाला जुलूस अपूर्व है।

रात्रि में 6 बजे से छात्र-छात्राओं की परीक्षा का परिणाम तथा पारितोषक वितरण तथा अनेक लुभावने कार्यक्रम रखे गये जो आठ बजे रात्रि तक चलते रहे। 8 बजे से शास्त्र-प्रवचन आरंभ हुआ और श्री बाबू युगलकिशोरजी ने शास्त्र-प्रवचन किया। 9 बजे शिविर समिति के संरक्षक श्रीमंत सेठ भगवानदासजी अध्यक्षता में अभिनंदन एवं विदाई-समारोह का कार्यक्रम आरंभ हुआ। आज चार विद्वानों—श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री, श्री युगलकिशोरजी कोटा, श्री चिमनभाई सोनगढ़, श्री नेमिचंदजी रखियाल को अभिनंदन-पत्र समर्पित किये गये। तथा शेष स्थानीय तथा अतिथि विद्वानों का पुष्प-मालाओं द्वारा अभिनंदन किया गया। आज के अभिनंदन-पत्र क्रमशः श्री सेठ डालचंदजी जैन, श्री प्रकाशचंदजी वकील मानिक चौकवाले, श्री कपूरचंदजी समैया एवं श्री पद्मकुमारजी सर्राफ ने पढ़कर समर्पित किये। अभिनंदन-पत्रों के उत्तर में सभी विद्वानों ने सागर आने पर प्रसन्नता प्रगट की और यह कहा कि इस तरह के व्यवस्थित तथा उपयोगी शिविर किसी भी स्थान पर अब तक नहीं हुए जहाँ एकसाथ इतने विद्वान इकट्ठे हुए हों। इतनी शानदार व्यवस्था, इतनी विशाल उपस्थिति की अनुशासनबद्धता तथा पदाधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं की कर्तव्य-निष्ठा सागर की अपनी विशेषता है। हम सब सागर जैन समाज की इस शानदार कार्य-प्रणाली पर अत्यंत प्रसन्न हैं, तथा उसे हार्दिक बधाई देते हैं। सागर समाज ने हमारा जो सन्मान किया तथा हमें इस लंबी अविधि में किसी प्रकार का कष्ट न होने दिया, इसके लिए हम सब सागर समाज के अत्यंत आभारी हैं। साथ ही, सागर में पंद्रह दिन तक जो वीतरागमार्ग की ज्ञानगंगा बही, उसका आप लोगों ने जिस एकाग्रता से रसास्वादन किया, यह सब देखकर हमारा हृदय आनंदविभोर हो उठता है; आप वीतराग मार्ग के सन्मुख होवें, यही कामना करते हैं, तथा यही कामना लेकर हम आप लोगों से विदा होवें।

अध्यक्षीय भाषण में समाज भूषण श्रीमान् सेठ भगवानदासजी जो कि मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल के अध्यक्ष भी हैं, बड़े ही विनम्र भाव से पूज्य श्री कानजीस्वामी का उपकार मानते हुए

कहा... कि 'स्वामीजी का प्रभाव सूर्य की प्रकाश-किरणें की भाँति दिग-दिगंत में फैल रहा है, उनकी ही अपार ज्ञान-गरिमा और शुभाशीर्वाद के फल से सागर में शिक्षण-शिविर संपन्न हो रहा है।' आपने विद्वानों उपस्थित जन-समूह और शिविर में सहयोग देनेवाले सभी कार्यकर्ताओं की सराहना की और उन सभी का आभार स्वीकार करते हुए कहा कि ऐसे कठिन शीत में कार्यकर्ताओं ने कठिन परिश्रम कर लगन से कार्य किया। शिविर प्रवक्ता-समिति ने यह चाहा है कि सागर में शिविर के अवसर पर गहन से गहन विषय पर गंभीरता से चर्चा हो जाये, और बहुत अंशों में समिति अपने उद्देश्य में सफल भी हुई। शास्त्री चर्चा में निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार, षट्द्रव्य, बंध, संवर, निर्जरा, क्रमबद्धपर्याय, अनेकांत और स्याद्वाद के अतिरिक्त समयसारजी की 73 वीं गाथा का विषय-मंथन हुआ। शिविर के पंद्रह दिन नि:संदेह ज्ञानवर्धन की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र की यथार्थता, उनकी मोक्षमार्ग में महत्ता, पुण्य-पाप विषयक हेयता आदि अनेक विषयों का अच्छी तरह स्पष्टीकरण हो गया। बहुतों की ग्रंथियाँ ढीली हुई, बहुतों ने पूर्वाग्रहों को छोड़ा, बहुतों ने नये सिरे से विचार करना शुरु किया, यही सब तो शिविर की सफलता है।

व्यवस्था की दृष्टि से शिविर प्रबंध-समिति के सभी प्रयत्न प्रशंसनीय कहे जा सकते हैं। पाण्डाल एवं बिजली, ध्वनि-विस्तारक यंत्रों की दूर तक साफ आवाज पहुँचना, प्रचार-साहित्य का समय पर तैयार करना, अर्थसंग्रह का कार्य जो अहं होता है, सरलता से पूरा करना, अतिथियों के आवास एवं भोजन का प्रबंध भी जो कठिन कार्य होता है, भलीभांति पूरा हुआ। शिविरार्थी एवं प्रतिनिधियों को श्री वर्णीभवन मोराजी में ठहरने की एवं भोजन की समुचित व्यवस्था की गई थी। वैसे समाज के प्रत्येक घर में मेहमान आये हुए थे। जिन्होंने शिविर में भाग लिया था, उन अतिथि विद्वानों को श्रीमंत सेठ भगवानदास शोभालालजी के बगीचे की शानदार कोठी में ठहराया गया; वहीं पर सबके भोजनादि की समुचित व्यवस्था थी; तदुपरांत नगर के अन्य सद्गृहस्थों के यहाँ भी विद्वानों के भोजन-समारंभ का आयोजन हुआ था। जिनके नाम निम्नप्रकार हैं:—श्री जीवनलालजी बहेरियावाले, श्री पंडित मोतीलालजी सर्राफ, श्री सिंघई डालचंदजी सर्राफ, श्री सेठ भागचंदजी सर्राफ, श्री खेमचंद मोतीलालजी बीड़ीवाले, श्री लक्ष्मीचंदजी (कुबेर), श्री कपूरचंद भायजी समैया, श्री प्रकाशचंदजी वकील

मानिक चौकवाले एवं श्री वर्णीभवन मोराजी। अंतिम दिन तारीख 28-11-71 को श्री सेठ भगवानदास शोभालालजी की ओर से एक विशाल प्रीतिभोज का आयोजन हुआ, जिसमें नगर के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति एवं त्यागीगण पधारे थे। सेठ साहब की ओर सभी त्यागियों को 'अष्ट प्रवचन' पुस्तक भेंट दी गई थी। शहर में कक्षा-स्थानों तक जाने-आने की काफी दूरी थी, आवागमन को सुविधाजनक बनाने के लिए श्रीमान् सेठ भगवानदास शोभालालजी की निजी 15 से 20 गाड़ियाँ प्रतिदिन शिविर के कार्य में लगी रहीं, जिससे शिविर के कार्यक्रम निश्चित समय पर प्रारंभ होने में न केवल सुविधा रही, बल्कि शिविर की व्यवस्था और शोभा बनी रही। श्रीमान् के परिवार ने शिविर को संपन्न करने में जो उत्सर्ग किया नि:संदेह वह अत्यंत महत्वपूर्ण एवं स्मरणीय है। श्रीमान् सेठ भगवानदासजी ने स्वयं इस जराजीर्ण आयु में इतना परिश्रम किया कि किसी कर्मठ युवक से किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। आपके द्वितीय सुपुत्र भाई श्री प्रेमचंद्रजी सेठ जिन्होंने मेरे साथ एवं अकेले रहकर जो घोर परिश्रम किया, वह अपने आपमें बेजोड़ है। यद्यपि वे शिविर-समिति के कोई अधिकारी नहीं थे; फिर भी बिना पद के इनकी शिविर के प्रति की गई सेवाएँ प्रशंसनीय रहीं। यहाँ एक विशेष उल्लेखनीय नाम है श्री राजमलजी जैन बी.काम, एल.एल.बी, कुचामनवालों का, जिनकी सेवाएँ शिक्षण-शिविर के प्रत्येक क्षेत्र में स्मरणीय रहेंगी। श्री राजमलजी पूज्य श्री कानजीस्वामी के परम भक्त हैं और सेठ श्री भगवानदास शोभालालजी के परिवार से आपके घनिष्ट संबंध हैं। शिविर-समिति के सौम्य-प्रकृति मंत्री श्री कपूरचंद्रजी भायजी जो अच्छे तत्त्वज्ञ एवं अध्ययनप्रेमी व्यक्ति हैं, उन्होंने शिविर-समारोह को वांछनीय दिशा देने, व्यावहारिक सूझ से काम लेने तथा आनेवाली अड़चनों से सजग रहने की ओर पूरा ध्यान रखा, तथा मेरे काम में कभी भी कहीं भी जिस तरह का भी मैंने सहयोग चाहा, उसी समय प्रदान किया। नि:संदेह वे मेरे स्मरणीय रहेंगे।

अंत में शिविर-समिति के प्रचार-मंत्री के नाते मैं अपने सभी सहयोगी जिन्होंने भी सागर शिविर को सफल बनाने में योग दिया है, उन सबका हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता स्वीकार करता हुआ उन्हें धन्यवाद अर्पण करता हूँ।

—: इति शुभम् :—

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र):—पूज्य गुरुदेव सुख-शंति में विराजमान हैं। सवेरे 8.00 से 9.00 बजे तक श्री नियमसार गाथा 16 पर तथा दोपहर में श्री समयसार गाथा 15 पर प्रवचन हो रहे हैं। तदुपरांत प्रात:काल श्री जिनमंदिर में पूजा का और सायंकाल भक्ति का कार्यक्रम नियमितरूप से चलते हैं; प्रतिदिन रात्रिचर्चा भी होती है। बाहर से अनेक जिज्ञासु पूज्य स्वामीजी के प्रवचन एवं सत्संग का लाभ लेने हेतु सोनगढ़ आये हुए हैं। श्री परमागम मंदिर का निर्माण-कार्य चल रहा है। पूज्य स्वामीजी का विहार फतेपुर गुजरात में जिनेन्द्र-पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव तथा अमरेली (सौराष्ट्र) में जिनेन्द्र वेदी-प्रतिष्ठा हेतु फाल्गुन कृष्ण 13 तारीख 12-2-72 को होगा। सोनगढ़ से लाठी, अमरेली, मोटा आंकडिया, वडिया, जेतपुर, गोंडल, राजकोट, मोरबी, जामनगर, वांकानेर, सुरेन्द्रनगर, जोरावरनगर, लींबडी, वढ़वाणशहर, अहमदाबाद, पालेज, दहेगाँव आदि का कार्यक्रम है। बाँभणगाँव में वेदी-प्रतिष्ठा महोत्सव है, तथा फतेपुर मोटा (जिला साबरकांठा—जो कि श्री बाबूभाई चुन्नीलाल महेता का गाँव है) वहाँ वैशाख सुदी 3 को पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव, स्वाध्याय भवन का उद्घाटन तथा जैन शिक्षण-शिविर का कार्यक्रम होने से पूज्य स्वामीजी 15 दिन तक फतेपुर में विराजेंगे। वहीं द्वितीय वैशाख सुदी 2 तारीख 14 मई रविवार को पूज्य स्वामीजी की 83वीं जन्मजयंती मनाई जायेगी। पश्चात् राजस्थान में उदयपुर, कुरावड़ आदि होकर भावनगर होते हुए पूज्य स्वामीजी सोनगढ़ पधारेंगे—ऐसा कार्यक्रम बन रहा है। तिथिवार कार्यक्रम तैयार होने पर अगले अंक में दिया जायेगा।

मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल की प्रगति के समाचार

मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में तत्त्वज्ञान वृद्धि के अनेक कार्य हो रहे हैं, कुछ हम मुमुक्षुओं के उत्साह हेतु यहाँ दे रहे हैं।

(1) करेली, शहपुरा, नागपुरा, बीना:—दिनांक 28-11-71 से 3-12-71 तक

7 दिन तक करेली में शिक्षण-शिविर श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियर के द्वारा चला, जिसमें परीक्षा के बाद बालकों को पुरस्कार वितरण किये गये। काफी प्रभावना हुई। इसीप्रकार 2 दिन शहपुरा, 5 दिन नागपुर व 7 दिन बीना में पंडितजी ने उपदेश देकर मुमुक्षुओं में तत्त्वज्ञान के प्रति विशेष जागृति कराई है।

(2) ग्वालियर:—दो दिन श्री ज्ञानचंद जैन विदिशा द्वारा बोर्ड के माध्यम से शिक्षण लिया गया तथा इसी समय एक मीटिंग में तय हुआ जिसके अनुसार ग्वालियर मुमुक्षु मंडल द्वारा श्री सोनागिरिजी सिद्धक्षेत्र (जिला दतिया में) 5 दिवसीय एक विशाल आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर दिनांक 29-2-72 से 4-3-72 तक लगेगा, जिसमें बाहर से मुख्य वक्ता श्री पंडित हुकमचंदजी जयपुर, श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, श्री पंडित कनुभाई दाहोद, श्री पंडित ज्ञानचंद विदिशा आदि होंगे, जिसमें हजारों मुमुक्षु अपूर्व अनुपम लाभ प्राप्त करेंगे। मध्यप्रदेश के विशाल सिद्धक्षेत्रों में यह पहला अपूर्व आयोजन होगा।

(3) छिंदवाडा:—श्री पंडित राजमलजी भोपाल द्वारा 6 दिन तक आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज में काफी धर्मप्रभावना हुई है।

(4) विदिशा:—श्री पंडित रतनचंदजी विदिशा के संयोजन में दिनांक 25-12-71 से 31-12-71 तक एक शिक्षण-शिविर लगाया गया, जिसमें 600 बालकों ने श्री रतनचंदजी, श्री ज्ञानचंद जैन, पंडित शीलचंद जैन विदिशा, श्री शांतीबाई तथा श्रीमती कमलाबाई के द्वारा लाभ प्राप्त किया है।

इस सब कार्य के लिये हम पूज्य स्वामीजी का अत्यंत आभार मानते हैं।

—ज्ञानचंद जैन

प्रचारमंत्री—मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल, विदिशा

जैन ट्रस्ट पुरस्कार योजना:—ट्रस्ट द्वारा आयोजित 'भगवान महावीर और उनके सिद्धांत' संबंधी पुरस्कार योजना के प्रति विद्वानों ने रुचि दिखाई है और उन्होंने कुछ सुझाव दिये हैं। उन सुझावों के अनुसार योजना में निम्न परिवर्तन किये जाते हैं:—

1- प्रबंध की संक्षिप्त विषय-सूची भेजन की अंतिम तिथि 30-11-71 के बजाय 31 मार्च 1972 रहेगी।

2- प्रबंध प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि 30 अगस्त, 1972 के स्थान पर 31 दिसम्बर 1972 रहेगी।

लेखकों से अनुरोध है क वे इसमें भाग लें ताकि भगवान महावीर का चरित्र श्रेष्ठरूप में प्रस्तुत किया जावे।

बंशीधर शास्त्री
24/4842 दरियागंज
दिल्ली-6

जुगमंदिरदास जैन ट्रस्टी
जैन ट्रस्ट, 157, नेताजी सुभाष रोड,
कमरा नं. 161, कलकत्ता-1

आगरा—पंडित हुकमचंदजी जयपुरवाले हम लोगों के विशेष आमंत्रण पर तारीख 28-11-71 को सागर शिक्षण-शिविर से लौटते हुए पधारे। पंडितजी का प्रवचन यहाँ कई स्थानों पर हुआ, बड़ी संख्या में लोग उपस्थित रहते थे, अपूर्व उत्साह था। एक दिन एत्मादपुर में भी प्रवचन हुआ। आगरा में बसों तथा कारों से प्रवचन सुनने लोग आते थे। पंडितजी का प्रवचन बड़ी मधुर शैली में हुआ; प्रवचन सुनने को दूर-दूर से लोग आते थे। शंका-समाधान भी बहुत अच्छी तरह हुआ। यहाँ की जनता ने ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण-कक्षाएँ लगाने की प्रार्थना पंडित नेमीचंदजी पाटनी तथा पंडित हुकमचंदजी से की है।

विनीत संयोजक- पद्मचंद जैन सर्राफ

बीना बजरिया (म.प्र.)—हमारे विशेष आमंत्रण व आग्रह पर पंडित धन्नालालजी ग्वालियरवाले यहाँ दिनांक 14-12-71 की शाम को पधारे। छह दिन तक प्रतिदिन पाँच घंटे का कार्यक्रम चलता था। प्रात: और रात्रि को बजरिया मंदिर में; दिन व संध्या समय तीन प्रोग्राम इटावा मंदिर में चलते थे। समयसार एवं रत्नकरंड श्रावकाचार पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन स्वानुभूतिगम्य गंभीर तत्त्व को छूते हुये होते थे। चर्चा गोष्ठी सरस और सरलता को लेते हुये होती थी। 'ब्लेक आउट' के होते हुये भी सभी श्रोतागण मंत्रमुग्ध से शांतिपूर्वक जिज्ञासुवृत्ति से समझते थे। सभी ने अनुभव किया कि ऐसी बात तो कभी सुनी ही नहीं।

लखमीचंद जैन, अध्यक्ष-मुमुक्षु मंडल बजरिया,बीना

करेली (म.प्र.)—श्री दिगम्बर जैन शिक्षण-शिविर सागर के समाप्त होने पर मैंने पंडित धन्नालालजी को करेली पधारने हेतु अनुरोध किया। पंडितजी के पधारने पर यहाँ के

मुमुक्षु मंडल, दिगम्बर जैन समाज व महिला समाज ने बहुत लाभ लिया। पंडितजी प्रोग्राम सुबह 5 से 6 बजे, 8 से 9 बजे समयसारजी व दोपहर को 1 से 3 बजे तक महिला समाज में प्रवचन व शाम को 8 से 9 बजे तक समयसारजी पर प्रवचन व शंका-समाधान 9 से 10 तक होती थी। इसतरह पंडितजी ने 5 घण्टे तक तत्त्वचर्चा, व भूलों को समझाकर हम लोगों को विभोर कर दिया; सर्व-समाज की यही इच्छा थी कि अभी 8 दिन पंडितजी और रहें, पर मुश्किल से 3 दिन का समय और मिला, जिसमें पंडितजी ने श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला का भी निरीक्षण किया और प्रवचनों का भव्य कार्यक्रम पूर्व कार्यक्रम के अनुसार चलता रहा। इन प्रवचनों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि समाज में जो आपसी द्वन्द्व एवं मनोमालिन्य था, वह भी मैत्रीभावपूर्वक समाप्त हो गया।

शहपुरा (मिटोनी)—श्री दिगम्बर जैन समाज की तरफ से श्री वीरनलालजी पंडितजी को लेने आये और पंडितजी 2 दिन के लिये शहपुरा गये; वहाँ भी समाज में जागृति हो रही है। एक बहिन जो इसी वर्ष हमारे साथ सोनगढ़ प्रौढ़ कक्षा में गई थीं, वहाँ उन्हें कुछ विशेष ज्ञान व वातावरण अच्छा लगा; वहाँ से वापिस आने पर बहिन ने वीतरागविज्ञान की पाठशाला में पढ़ाना शुरु किया है। —पन्नालाल जैन

बरायठा (सागर-म.प्र.) से श्री विजयकुमार जैन लिखते हैं कि—इस वर्ष हमारे क्षेत्र में तीन वीतरागविज्ञान पाठशालाओं की स्थापना हुई है:—

1. शाहगढ़ (सागर-म.प्र.), 2. हीरापुर (सागर-म.प्र.), 3. घुवारा (छतरपुर-म.प्र.); इनके अलावा निम्नोक्त 4-5 स्थानों पर वीतराविज्ञान पाठशालाओं की स्थापना का प्रयत्न चल रहा है:—

1. मड़देवरा (सागर-म.प्र.), 2. तिगोड़ा (सागर-म.प्र.), 3. रामटौरिया (छतरपुर-म.प्र.), 4. मड़ावरा (झांसी-उ.प्र.)। आशा है कि इन स्थानों पर भी शीघ्र ही पाठशालाएँ खुल जायेंगी। जयपुर का सभी प्रकार का पाठ्यक्रम श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल बरायठा में उपलब्ध है। समीपवर्ती बंधु चाहें तो यहाँ से मँगवा सकते हैं।

विजयकुमार जैन

मंत्री-श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, बरायठा (सागर) म.प्र.

आत्मधर्म के ग्राहकों से...

आपके प्रिय मासिक-पत्र आत्मधर्म का नया वर्ष आगामी द्वितीय वैशाख मास से प्रारंभ हो रहा है। पिछले दिनों कागज आदि के भाव अधिक बढ़ जाने के कारण आत्मधर्म के वार्षिक-मूल्य (चंदे) में मात्र 1) एक रुपये की वृद्धि की जा रही है। अत: अगले वर्ष का चंदा 4) चार रुपया होगा। आशा है इस विवशता के लिये ग्राहक हमें क्षमा करेंगे। आत्मधर्म के ग्राहक एक वर्ष के लिये ही बनाये जाते हैं और मर्यादित संख्या में ही प्रतियाँ छपाई जाती हैं; इसलिये देर से ग्राहक बननेवालों को पिछले अंक नहीं मिल पाते। कृपया अपना आगामी वर्ष का चंदा 4) मनी आर्डर से भिजवा देवें।

पता :—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नये प्रकाशन

श्री समयसारजी शास्त्र (चतुर्थावृत्ति)—यह भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवकृत सर्वोत्तम शास्त्र है जो अद्वितीय जगत्चक्षु ग्रंथाधिराज है। ज्ञानप्रवाद पूर्व में से आया हुआ और परिभाषणसूत्र रचना है। उस पर आत्मख्याति नामक संस्कृत टीका श्री अमृतचंद्राचार्य कृत सर्वोत्तम है। विशेष में कलशरूप श्लोकों का अन्वयार्थ भी दिया गया है। जिसमें ज्ञानी-अज्ञानी का स्वरूप अति स्पष्ट समझाया है। जीव-अजीव, कर्ता-कर्म, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध-मोक्ष, सर्वविशुद्धान, अनेकांत और साध्य-साधक आदि प्रयोजनभूत तत्त्वों का नय-विभाग सहित वर्णन है। अत्यंत अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) को समझाया गया है। सर्वज्ञ-वीतरागकथित यथार्थता, वीतरागता और स्वतंत्रता ग्रहण करने की रुचि से सत्समागम द्वारा पढ़ने से उसका अपूर्व रसास्वाद आता है। मूल्य साढ़े सात रुपया लागत से बहुत कम है। पृष्ठ संख्या 650, पोस्टेजादि अलग। (नोट—यह शास्त्र जयपुर, बम्बई, कलकत्ता, भोपाल, इंदौर, सागर, विदिशा, आगरा, उदयपुर, नागपुर आदि नगरों में मुमुक्षु मंडल द्वारा भी प्राप्त हो सकेगा।)

श्री समयसार-प्रवचन (भाग-1) (द्वितीयावृत्ति)—गाथा 1 से 12 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन। पृष्ठ संख्या 480, मूल्य 4.50।

श्री समयसार-प्रवचन (भाग-2) (द्वितीयावृत्ति)—गाथा 13 से 33 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन। पृष्ठ संख्या 510, मूल्य 4.50।

भेदविज्ञानसार (द्वितीयावृत्ति)—श्री समयसारजी के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार गाथा 390 से 404 पर पूज्य स्वामीजी के भाववाही प्रवचन। पृष्ठ संख्या 275, मूल्य मात्र-2.00।

हित की बात—(संपादक—श्री जमुभाई रवाणी, प्रकाशक-ब्रह्मचारी दुलीचंदजी ग्रंथमाला, सोनगढ़) यह पुस्तिका पहले 5000 श्री सेठ जुगराजजी जैन की ओर से छपी थी जो भेंट-स्वरूप वितरित की गई थी। लोगों को बहुत पसंद आयी और निरंतर माँग बनी रही जिससे अब दूसरी बार छपाई गई है।

जेबी साइज। पृष्ठ संख्या 116, मूल्य 0.35 पै.

पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

1	समयसार	(प्रेस में)
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश-टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय-संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग-1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग-2)	4.50
8	समयसार प्रवचन (भाग-4)	4.00
9	मुक्ति का मार्ग	0.50
10	चिद्विलास	1.50
11	जैन बालपोथी (भाग-1)	0.25
12	जैन बालपोथी (भाग-2)	0.40
13	समयसार पद्यानुवाद	0.25
14	नियमसार (हरिगीत)	0.25
15	द्रव्यसंग्रह	0.85
16	छहढाला (सचित्र)	1.00
17	अध्यात्म-संदेश	1.50
18	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
19	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	0.25
20	दशलक्षण धर्म	0.75
21	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
22	मोक्षमार्गप्रकाशक (7वाँ अध्याय)	0.50
23	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
24	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
25	हितपद संग्रह (भाग-2)	0.75
26	सत्तास्वरूप (श्री गोम्मटसार की प्रस्तावना एवं समाधिमरण स्वरूप सहित)	1.10
27	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
28	अष्ट-प्रवचन (भाग-2)	1.50
29	अध्यात्मवाणी	1.00
30	अमृतवाणी	1.10
31	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	0.75
32	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-2	1.10
33	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-3	0.50
34	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.40
35	बालबोध पाठमाला, भाग-2	0.50
36	बालबोध पाठमाला, भाग-3	0.55
37	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
38	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.75
39	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.75
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
40	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
41	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग-1)	8.00
42	" " (भाग-2)	8.00

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)